वार्षिक रू. १००, मूल्य रू. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५५ अंक १ जनवरी २०१७

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)
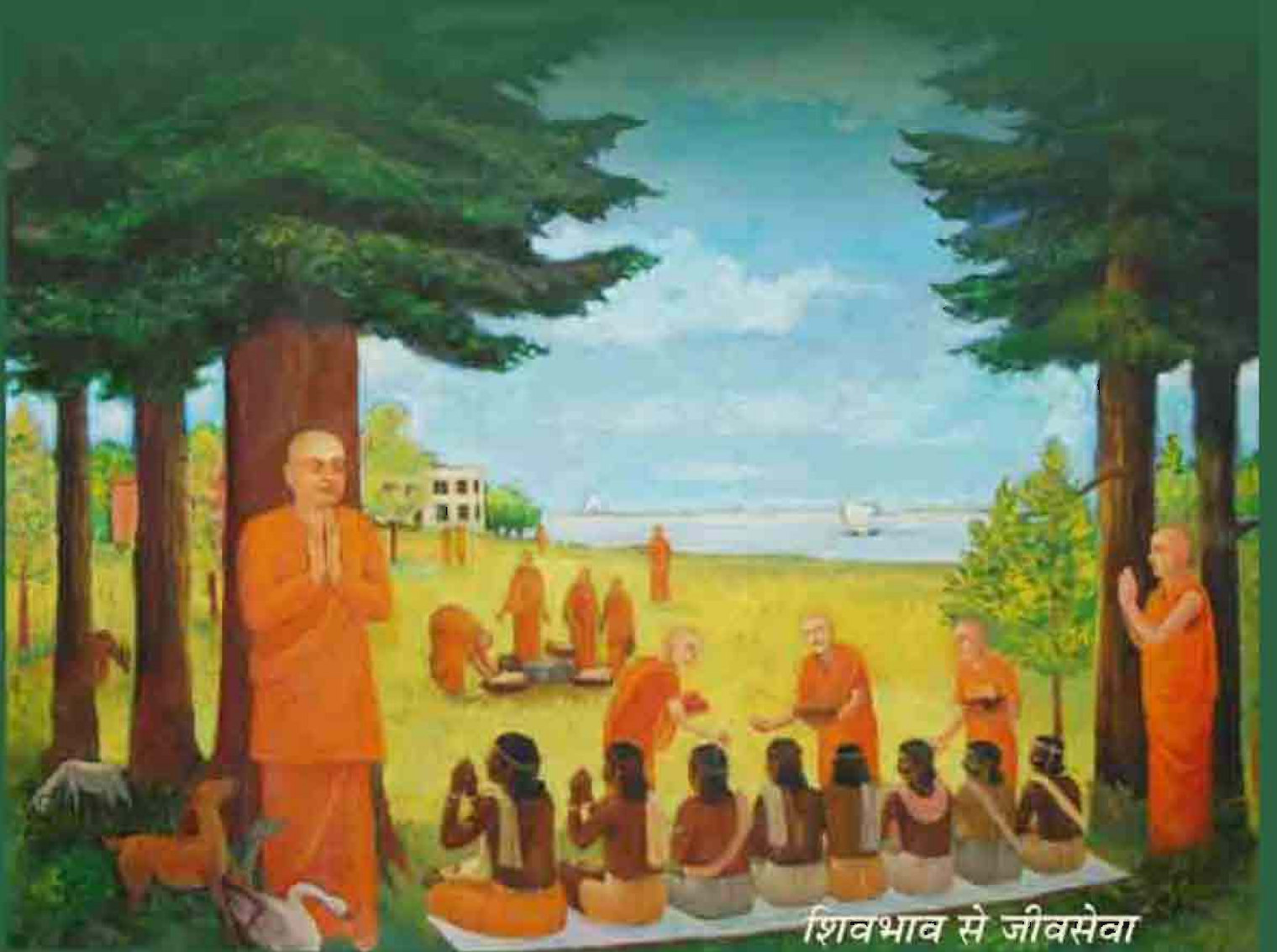
शिवभाव से जीवसेवा

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जनवरी २०१७

वर्ष ५५
अंक १

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : युगबोध डिजिटल प्रिंट्स, समता कॉलोनी, रायपुर - ४९२००१ (छ.ग.) (फोन : ४२००९२४/५)

जनवरी माह के जयन्ती और त्योहार

४	स्वामी सारदानन्द
५	गुरु गोविन्द सिंह जयन्ती
११	स्वामी तुरीयानन्द
१२	राष्ट्रीय युवा दिवस
१९	स्वामी विवेकानन्द
२६	गणतन्त्र दिवस
२९	स्वामी ब्रह्मानन्द
३१	स्वामी त्रिगुणातीतानन्द

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर	१०००/-
श्री मनमोहन खेमका, गुढ़ियारी रायपुर (छ.ग.)	५०००/-
श्री आर.एस. अग्रवाल, जवाहरनगर, जयपुर	१०००/-
श्रीमती शांती देवी, जवाहरनगर, जयपुर	१०००/-
श्री पियुष अग्रवाल, कनकपुरा रोड, बंगलुरू	१०००/-
श्री मोहनलाल खण्डेवाल, स्टेशनरोड अकोला	१०००/-
प्रो. ओंकारलाल चैतराम पटले, गोंदिया (महा.)	१०००/-
प्रो. के. टी. कोलते, प्रतापनगर, नागपुर (महा.)	५०००/-
श्री प्रताप नारायण तिवारी, कबीरनगर, रायपुर	१०००/-

आवश्यक सूचना, देखें पृ. २७

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
८४.	....	स्टाफ लाइब्रेरी, ओरियन्टल बैंक ऑफ कामर्स, भोपाल
८५.	श्री दयाशंकर व्यास, स्नेहनगर, इन्दौर (म.प्र.)	आस्था वृद्धाश्रम, विजय नगर इन्दौर (म.प्र.)
८६.	श्री दयाशंकर व्यास, स्नेहनगर, इन्दौर (म.प्र.)	शास. माध्यमिक विद्यालय, विजय नगर इन्दौर (म.प्र.)
८७.	....	आचार्य पंतश्री गंधमुनि नामसाहेब, शा.पी.जी.महा.वि.,कवर्धा
८८.	....	शा. गजानंद माधव मुक्तिबोध महाविद्यालय, कवर्धा (छ.ग.)
८९.	श्री भास्कर प्रताप सिंह, द्वारिका, नई दिल्ली	सरस्वती विद्यानिकेतन, एनगांदीपुर सेन्ट्रल स्कूल, केरल
९०.	श्री मोहनलाल खण्डेलवाल, अकोला (महा.)	शा. महाविद्यालय गोबरा, नवापारा-राजिम (छ.ग.)
९१.	श्री लक्ष्मीशरण साव, डोंगरगढ़ (छ.ग.)	शा. नेहरू कला,वाणिज्य, विज्ञान पी.जी. कॉलेज, डोंगरगढ़
९२.	श्रीमती रजनी प्रशान्त कुमार तिवारी, रायपुर	शा. महाविद्यालय, लवन, जि. - बलौदाबाजार (छ.ग.)
९३.	श्रीमती अर्चना सुशान्त कुमार तिवारी, रायपुर	शा. राजीवलोचन महाविद्यालय, राजिम, जि.गरियाबंद (छ.ग.)
९४.	श्रीमती अनिता वेदान्त कुमार तिवारी, रायपुर	शा. महाविद्यालय, बलौदा, जि.- महासमुन्द (छ.ग.)
९५.	श्रीमती दीपा अमोद रावत, मोवा, रायपुर (छ.ग.)	शा. महाविद्यालय, भखारा, जि.- धमतरी (छ.ग.)
९६.	श्रीमती ज्योति महेन्द्रकुमार शर्मा, गुप्तेसर, जबलपुर	शा. महाविद्यालय, पिपरिया, जि.- कवर्धा (छ.ग.)
९७.	श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	गवर्मेंट होम साइन्स कॉलेज, सेक्ट.१०-डी, चंडीगढ़
९८.	श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	माता कर्मा कन्या महाविद्यालय, महासमुन्द (छ.ग.)
९९.	...	शहीद वीरनारायण सिंह, शा. महाविद्यालय, बिलाईगढ़ (छ.ग.)
१००	...	नालंदा यूनिवर्सिटी, राजगिर, जिला - नालंदा (बिहार)
१०१	...	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
१०२.	...	गवर्मेंट वुमेन इंजीनियरिंग कॉलेज, मखपुरा, अजमेर (राज.)
१०३.	...	कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, पुणे वेलसेली रोड, पूणे (महा.)

विवेकानन्द वन्दना

दधद् दिव्यज्योतिः परम रमणीयं नयनयोः,
प्रसन्नास्यः सौम्यो मुनिकनकशोभाधरवपुः ।
सुधिः सत्यद्रष्टा भुवनवरणीयः श्रुतिधरो,
विवेकानन्दोऽसौ मनुजतनुधारी स्मरहरः ।।

– जिनके नेत्रद्वय परम सुन्दर दिव्य ज्योतिर्मय हैं, जो प्रसन्नमुख-मंडल, मुनियों के समान स्वर्ण वर्ण दीप्तिमय, विवेकी, सत्यद्रष्टा, विश्ववन्द्य और श्रुतिधर हैं, वे ही विवेकानन्द नररूपधारी शिव हैं।

दरिद्राणां बन्धुर्निखिलमनुजानां प्रियकरः,
समो ज्ञाने कर्मण्यविचलितभक्त्यां गुरुपदे ।
समः शत्रौ मित्रेऽप्रतिममहिमोद्दीप्ततपनो,
विवेकानन्दो मे हृदयगगने भातु सततम् ।।

– जो दरिद्रों के बन्धु मानवहितैषी, ज्ञान, कर्म, भक्ति में समान दक्ष, गुरुचरणों में अनन्य निष्ठावान, शत्रु-मित्र में समदृष्टि, अतुल्य महिमामय, दीप्त सूर्य के समान हैं, वे विवेकानन्द हमारे हृदयाकाश में विराजित रहें।

(सपार्षद श्रीरामकृष्णरत्न-स्तोत्रमाला,पृ-२२८-२३०)

पुरखों की थाती

वाताऽभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यम्-
आपातमात्रमधुरो विषयोपभोगः ।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमानलोला-
धर्मः सखा परमहो परलोकयाने ।।५३१।।

– पृथ्वी का साम्राज्य वायु के झोकों से छिन्न-भिन्न हो जानेवाले बादल के समान क्षणभंगुर है, विषयों के भोग क्षण मात्र के लिए ही मधुर लगते हैं और जीवन घासों के कोनों पर पड़े ओस-कण के समान चंचल हैं, परलोक-यात्रा के समय तो एकमात्र धर्म ही परम सखा के रूप में अपने साथ जाता है ।

विषमां हि दशां प्राप्य दैवं गर्हयते नरः ।
आत्मनः कर्मदोषांश्च नैव जानात्यपण्डितः ।।५३२।

– दुखदायी अवस्था में मनुष्य भाग्य को दोष देता रहता है । अज्ञानी व्यक्ति अपने कर्मों में हुई भूलों को कभी नहीं देखता ।

शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रम् इत्यक्षरद्वयम् ।।५३३।।

– न जाने किस महापुरुष ने 'मित्र' इस दो अक्षरों वाले शब्द की सृष्टि की है ! मित्र वह है, जो शोक-शत्रु तथा भय से बचाता है और प्रेम तथा विश्वास का पात्र है ।

शशि-दिवाकरयोर्ग्रहपीडनं
गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवानिति मे मतिः ।।५३४।।

– सूर्य-चन्द्रमा को ग्रहण लगना, हाथियों तथा विषधर साँपों भी का बँध जाना और बुद्धिमान मनुष्यों की निर्धनता को देखकर मैंने यही समझा है कि भाग्य ही सबसे प्रबल होता है ।

विविध भजन

विवेकानन्द का गान करें

स्वामी रामतत्त्वानन्द

विवेकानन्द के गुणों का आओ बच्चों गान करें।
भारत माँ के वीर पूत का खेल खेल में ध्यान करें।।
जय विवेकानन्द, वीर विवेकानन्द ...
काशी के हो सदाशिव तुम, कलकत्ता में जनम लिए,
रामकृष्ण के पावन संग में, अमृत रस का पान करें।
स्वामीजी के संग में हम भी अमृत रस का पान करें।।
विवेकानन्द के गुणों का... जय विवेकानन्द ...
दुख-पीड़ा दीन-दुखियों की दूर करने ठान लिया,
शिलाखंड में बैठके तूने भारत माँ का ध्यान किया।
स्वामीजी के जैसे हम भी भारत का सम्मान करें।।
विवेकानन्द के गुणों का... जय विवेकानन्द ...
आत्मा अजर अमर अविनाशी शक्तिमन्त्र प्रदान किए,
वेदों के पावन मन्त्रों का शिकागों में गान किए।
भारत का गौरव बढ़ाये, उस गौरव का गान करें।।
विवेकानन्द के गुणों का... जय विवेकानन्द ...
शिवज्ञान से जीव की सेवा मुक्ति मन्त्र प्रदान किए,
रामकृष्ण संघ स्थापित कर सब जग का कल्याण किए।
जीव-जीव में शिव बसा है, शक्ति का सम्मान करें।।
विवेकानन्द के गुणों का... जय विवेकानन्द ...

ठाकुर ! मुझे राखो चरण चाकर

आनन्द तिवारी पौराणिक

ठाकुर ! मुझे राखो चरण चाकर।
जन्म सफल मेरा होगा, तव पद-रेणु सीस धरकर।।
मकड़जाल माया ममता का, विषय-भोग भव-बन्धन।
त्रिताप झेलता उलझ-उलझकर, बीता सकल जनम।।
मर्कट कीर-सा बँधा मोहवश, भव पिंजरे को माना घर।
अज्ञान तिमिर, प्रारब्ध कर्मवश भटका इधर-उधर।।
अब यह जनम अकारथ न हो, करो कृपा करुणाकर।
जनम सफल मेरा होगा, तव पद-रेणु सीस धरकर।।
मन-मन्दिर में अबहु पधारो, पाप-शाप त्रिताप मिटाओ।
चरण चाकरी में हे प्रभु, इस परिकर को लगाओ।।
चातक स्वाति बूँद-सा हठ, एकनिष्ठ यह निश्चय।
नाम कृपामय करो सार्थक, करो दास को निर्भय।।
वही अहैतुकी अनुपम छवि, प्रकट दरस हरसाकर।
जनम सफल मेरा होगा, तव पद-रेणु सीस धरकर।।

नाम प्रभु का बोल

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

कितना खोया कितना पाया तोल सके तो तोल।
तूने हीरा गँवाया पगले माटी के मोल।।
विरहिन क्यों झंझट में, तेरा पिया है तेरे घट में।
कह गये दास कबीर देख ले 'घुंघट के पट खोल'।।
तूने हीरा गँवाया पगले ....
बिनु भगवंत भजन पछितायो,रे मन मूरख जनम गँवायो।
गूँज रहे जन-जन के मन में, सूरदास के बोल।।
तूने हीरा गँवाया पगले ...
पीकर प्रेम सुधारस प्याली, बोल उठी मीरा मतवाली।
'राम रतन धन पायो' सद्‌गुरु ने दी वस्तु अमोल।।
तूने हीरा गँवाया पगले ....
अब तो चेत रे अभिमानी, गूँज रही तुलसी की बानी।
'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ' नाम प्रभु का बोल।।
तूने हीरा गँवाया पगले ...
श्रीचैतन्य कृष्ण मतवारे, डोल डोलकर द्वारे द्वारे।
हरी बोल का अलख जगाया, बजा मंजीरे ढोल।।
तूने हीरा गँवाया पगले ...
क्षणभंगुर संसार विनाशी, सार कह्यो श्रीगुरु अविनाशी।
जन राजेश सुमिर हरि को फिर जी चाहे जहँ डोल।।
तूने हीरा गँवाया पगला...

हे शक्तिमान सब सम्भव है

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

छोड़ मत जीवन की आस।
तेरे भीतर अन्तर्हित है, ईश्वर का दिव्य प्रकाश।।
तुम नित्यमुक्त हो नित्यशुद्ध, हो तुम अनादि आत्मा प्रबुद्ध।
तुम सारी प्रकृति के स्वामी, यह जगत तुम्हारा दास।।
सूर्य-चन्द्र-नभ-ग्रह-तारे, ते अनुचर हैं ये सारे।
तुम परम पुरुष हो हे प्राणी, यह जग तेरा ही प्रकाश।।
तुम एक अखण्ड परमात्मा हो, तुम नहीं कभी पापात्मा हो।
इस जग के कण-कण में ही, है तेरा आभास।।
मत मायाजाल में फँस जाना, अपना स्वरूप नहिं भूल जाना।
हे शक्तिमान सब सम्भव है, तू कर निष्ठा से प्रयास ।।

स्वर्णिम भारत के प्रत्यक्ष द्रष्टा : स्वामी विवेकानन्द

आज भारत भौतिकता के क्षेत्र में सर्वांगीण विकास की ओर द्रुत गति से अग्रसर हो रहा है। विश्व के महान भौतिकवादी देशों के समकक्ष पृथ्वी और अन्तरिक्ष में अपना सम्मानित महत्त्वपूर्ण स्थान बना रहा है। पृथ्वी पर मानव जीवन की मूलभूत विभिन्न प्रकार की सुख-सुविधाओं से लेकर आधुनिक तकनीकी सुविधायें प्रदान कर रहा है। कृषि से लेकर आकाशीय उड़ान तक की आधुनिक प्रगत्यात्मक सुविधायें प्रदान कर रहा है। भारतीय उत्पादन का सबल प्रयास जारी है। हमारा महान प्रिय देश अन्य राष्ट्रों से सामरिक दृष्टि से लेकर व्यावहारिक मानवीय प्रेम, सद्भावना और सौहार्द सामंजस्य की स्थापना का वैश्विक प्रयास आत्मसम्मान के साथ कर रहा है। 'भारत-उदय' की मन्त्र-ध्वनि भारतीय मीडिया – दूरदर्शन, आकाशवाणी और समाचार पत्रों के द्वारा वर्षों से भारतवासियों के मानस पटल पर गूँज रही है।

लेकिन भारतवासियों को यह पता होना चाहिये कि इस स्वर्णिम भारत के आदि प्रत्यक्ष द्रष्टा हैं विश्व-जन-मानस के सर्वपूज्य जगद्वन्द्य महान योद्धा यतिचक्रचूड़ामणि त्यागी तपोनिष्ठ विश्वप्रेमी संन्यासी स्वामी विवेकानन्द, जिन्होंने भारतवासियों की सुख-सुविधा के लिये अपनी मुक्ति तक को न्योछावर कर दिया। स्वामीजी ने भारत उदय का जो स्वप्न देखा था, वह स्वप्न कालान्तर में वर्षों बाद अभी दृष्टिगोचर हो रहा है। स्वामीजी ने जन-साधारण की उपेक्षा और नारियों की अशिक्षा को भारत के मूल पतन का कारण माना था। उनका विचार था कि जब तक सामान्य जनता शिक्षित, जाग्रत और उत्तरदायी नहीं होती, तब तक भारत का उत्थान सम्भव नहीं है। इसलिये वे नवभारत के उदय की घोषणा करते हैं, मानो वे उसे प्रत्यक्ष देखते हुए देशवासियों को सम्बोधित कर रहे हों। इसकी झलक हमें उनके कर-कमलों से ही लिखित संस्मरणों में मिलती है।

नव भारत का उदय हो !

स्वामी विवेकानन्द अपनी यूरोप यात्रा के संस्मरण में नवभारत के उदय और उसके उत्तराधिकारियों का सबल पक्ष स्थापित करते हुए कहते हैं – "एक नवीन भारत का उदय हो, उदय हो – हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। नवभारत का उदय हो बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखानों से, हाट से, बाजार से। उदय हो ! झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों और पर्वतों से। इन लोगों ने हजारों वर्षों तक नीरव अत्याचार सहन किया है और उससे अद्भुत सहिष्णुता प्राप्त की है। अपार दुख उठाया है, जिससे पायी है अटल जीवनी शक्ति। ये लोग मुट्ठी भर सत्तू खाकर संसार को उलट सकेंगे। आधी रोटी मिली, तो तीनों लोकों में इनका तेज नहीं घटेगा? ये रक्तबीज के प्राणों से युक्त हैं और इन्होंने सदाचार की शक्ति प्राप्त की है, जो तीनों लोकों में नहीं है। इतनी शान्ति, इतनी सन्तुष्टि, इतना प्रेम, मौन रहकर दिन-रात इतना परिश्रम करना और कार्य के समय सिंह जैसा विक्रम !! ऐ अतीत के कंकालो ! यही है तुम्हारे सामने तुम्हारा उत्तराधिकारी भावी भारत।"[१] (वि. सा. ८-१६७)

स्वामी विवेकानन्द की यह उद्घोषणा कल्पना और इतिहास के गर्भ में कालान्तर में पलने वाली भविष्यवाणी मात्र नहीं थी। उन्होंने इसका प्रत्यक्ष दर्शन किया था। वह ऐतिहासिक और महान स्थल है भारत के दक्षिणी छोर पर स्थित कन्याकुमारी माँ के पास समुद्रस्थ शिला, जो आज 'विवेकानन्द स्मारक शिला' के नाम से सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। सम्भवत: २४ दिसम्बर, १८९३ को उन्होंने उस शिला पर ध्यान किया। ध्यान में उन्होंने भारत के भूत और भविष्य का दर्शन किया। 'युगनायक विवेकानन्द' के प्रणेता स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं – "उनकी आँखों के समक्ष भारत के इतिहास के सारे पन्ने ही मानो उसी समय खुल गये। हृदय में उद्भासित आध्यात्मिक आलोक के द्वारा पढ़ने पर उन्होंने भारतीय धर्म और संस्कृति की भावी सम्भावनाओं का एक पूर्ण और अत्यन्त उज्ज्वल चित्र पाया।...उन्होंने समझ लिया कि धर्म ही भारत की अगणित सन्तानों का मेरुदण्ड है। उनके शान्त समाहित चित्त में यही वाणी ध्वनित हुई – 'जिस प्रगाढ़ आध्यात्मिक अनुभूति के प्रभाव से भारतवर्ष एक दिन विभिन्न संस्कृतियों और विभिन्न धर्मों की जन्मभूमि और मिलन स्थली में परिणत हुआ

था, एक मात्र उसी अनुभूति के बल पर पुनरभ्युत्थान और पुनर्प्रतिष्ठा सम्भव है।''' (युगनायक विवेकानन्द, खं.१, पृ.३३१-३२)

इस अनुभूति और प्रत्यक्ष दर्शन के बाद स्वामीजी उज्ज्वल नवभारत के निर्माण में लग गये। उन्होंने विश्वव्यापी अभियान बनाया। उसी अभियान में वे शिकागो की यात्रा करते हैं और वहाँ सम्पूर्ण उत्साह के साथ भारतवर्ष के उत्थान हेतु कार्य करते हैं, योजनाएँ बनाते हैं और भारत में वापस आकर उन योजनाओं के कार्यान्वयन में लग जाते हैं।

नव-भारत उदय का स्वर-निनाद

शिकागो से आने के बाद जैसे वे प्रत्यक्ष देखकर घोषित कर रहे हैं। उनका यह उद्‌घोष, नवभारत उदय का उनका स्वर-निनाद किसी रणभेरी से कम प्रतीत नहीं होता। रामनाद के राजा के मानपत्र के उत्तर में वे कहते हैं – ''सुदीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई लग रही है । महादुख प्राय: समाप्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निमग्न शव मानो जाग्रत हो रहा है। इतिहास की बात तो दूर रही, जिस सुदूर अतीत के घनान्धकार को भेद करने में जनश्रुतियाँ भी असमर्थ हैं, वहीं से एक आवाज हमारे पास आ रही है। ज्ञान, भक्ति और कर्म के अनन्त हिमालय स्वरूप हमारी मातृभूमि भारत की प्रत्येक चोटी पर प्रतिध्वनित होकर यह आवाज मृदु, दृढ़ परन्तु अभ्रान्त स्वर में हमारे पास तक आ रही है। जितना समय बीतता है, वह उतनी ही स्पष्ट और गम्भीर होती जाती है – और देखो, वह निद्रित भारत अब जागने लगा है। मानो हिमालय के प्राणप्रद वायुस्पर्श से मृतदेह के शिथिलप्राय अस्थि-मांस तक में प्राण-संचार हो रहा है। जड़ता धीरे-धीरे दूर हो रही है। जो अन्धे हैं, वे देख नहीं सकते और जो विकृत बुद्धि हैं, वे समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब यह फिर से सो नहीं सकती। कोई बाह्य शक्ति अब इसे दबा नहीं सकती। यह असाधारण शक्तिशाली देश अब जागकर खड़ा हो रहा है। ''[२] (वि. सा. ५-१६७)

बेलूड़ मठ की घटना

एक दिन बेलूड़ मठ में स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – ''मुझ पर विश्वास करो। मुझे एक दिव्य दर्शन हुआ है, जिसमें मैंने स्पष्ट रूप से देखा है कि आगामी चार-पाँच शताब्दियों के दौरान भारत में क्या घटित होनेवाला है।''

एक अन्य महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणी में स्वामीजी कहते हैं – ''स्वाधीन होने के बाद भारत पाश्चात्य भौतिकवाद को स्वीकार करेगा और इस सीमा तक भौतिक समृद्धि प्राप्त करेगा कि इस क्षेत्र में वह अपनी प्राचीन गरिमा को पीछे छोड़ जायेगा।'' (मेरा भारत अमर भारत, पृष्ठ - १६५)

स्वामी विवेकानन्द भारतीय पुनरुत्थान हेतु इतने उत्साहित थे कि जहाँ उन्होंने सम्पूर्ण देशवासियों को राष्ट्र के प्रति कर्तव्य-पालन के लिये प्रेरित किया, वहीं संन्यासियों को देश के प्रति कर्तव्य पालन हेतु प्रेरणा प्रदान की और संन्यासी की नई परिभाषा दी। उनके भावों का सार 'मेरा भारत अमर भारत' नामक पुस्तक मिलता है – ''स्वामीजी प्राय: ही अपने शिष्यों से कहा करते थे, जो कोई दूसरों की भलाई करने की चेष्टा नहीं करता, वह संन्यासी कहलाने के योग्य नहीं है। वे बारम्बार कहते, दूसरों के हितार्थ प्राण देने के लिये, जीवों के गगनभेदी रुदन को मिटाने के लिये, विधवाओं के आँसू पोंछने के लिये, पुत्र-वियोग से पीड़ित माता को सान्त्वना प्रदान करने के लिये, अज्ञ जनता को जीवन-संग्राम के योग्य बनाने के लिये, सबका लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण करने के लिये और सबको ज्ञान का आलोक देकर उनके भीतर सोये हुये ब्रह्मभाव को जगाने के लिये ही जगत में संन्यासी का जन्म हुआ है।'' (मेरा भारत अमर भारत, पृष्ठ-१३९)

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीजी ने नवभारत उदय का प्रत्यक्ष दर्शन किया। उस विषम परिस्थिति में उन्होंने सम्पूर्ण भारतवासियों में आशा की किरण जगायी और स्वयं पूरे उत्साह के साथ लग गये, जिसका सुपरिणाम आज विश्व पटल पर भारतीय गौरव के रूप में दीख रहा है। अत: स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्रत्यक्ष दर्शित अभूतपूर्व गौरवसम्पन्न विश्वगुरु महान भारत के नव-निर्माण में अपने तन-मन-धन को समर्पित करें और अपनी भावी पीढ़ियों को प्रदान करें सर्वसमृद्ध गरिमामय भारतवर्ष ! ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द

प्रा. शंकरी प्रसाद बसु

(विद्वान् लेखक ने दीर्घ काल तक भगिनी निवेदिता के जीवन तथा कार्यों पर गहन शोध करने के बाद उक्त विषयक अंग्रेजी तथा बँगला में अनेक ग्रन्थों की रचना की है। बँगला भाषा में चार खण्डों में प्रकाशित उनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'निवेदिता लोकमाता' इन महीयसी नारी के जीवन तथा अवदानों पर विपुल आलोकपात करता है। निवेदिता की सार्ध जन्म-शताब्दी के अवसर पर, विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु इस पत्रिका के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसके प्रारम्भिक अंशों का हिन्दी अनुवाद किया है। – सं.)
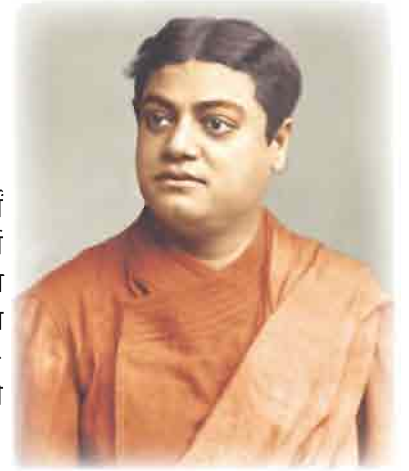
स्वामी विवेकानन्द के देहावसान के बाद भगिनी निवेदिता ने उनके प्रमुख सन्देशवाहक की भूमिका को स्वीकार किया। स्वामीजी ने एक बार मिस मैक्लाउड को बताया था कि निवेदिता के निर्माण में ही उन्होंने सर्वाधिक समय व्यय किया है। स्रष्टा स्वामीजी के हाथों से प्रक्षेपित इस नारी-वज्र ने भारत के इतिहास में कौन-सी अग्रिमयी भूमिका ग्रहण की थी, इसी को प्रस्तुत करना वर्तमान ग्रन्थ का उद्देश्य है। परन्तु निवेदिता की बाह्य अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि में जिस विराट अदृश्य अध्यात्म-जगत् की भूमिका थी, उसे अब भी पूरी तरह से उद्घाटित नहीं किया जा सका है। निवेदिता की प्रकाशित रचनाओं में उस गहन आवृत्त जीवन की झलकियाँ मात्र ही प्रकट हुई हैं। बड़े सौभाग्य की बात है कि मिस मैक्लाउड को लिखे पत्रों में उनके जीवन का यह अज्ञात पक्ष उद्घाटित हुआ है – उन्हीं पत्रों के एक बड़े अंश का उपयोग अब हमारे लिये सम्भव हो गया है।

निवेदिता के जीवन में विवेकानन्द ही – गुरु, पिता, ईश्वर – सब कुछ थे। निवेदिता सदा-सर्वदा स्वामीजी के ही चिन्तन तथा बातों में मग्न रहती थीं। स्वामीजी के विषय में उनकी रचनाएँ कम नहीं हैं। इस विषय पर उनके लिखे हुए दो स्वतंत्र ग्रन्थ हैं – 'The Master as I saw Him' (मेरे गुरुदेव : जैसा मैंने देखा) था 'Notes of Some Wanderings with Swami Vivekananda' (स्वामी विवेकानन्द के साथ भ्रमण)। इसके अतिरिक्त स्वामीजी के विषय में लिखे गये उनके कुछ लेखों तथा अनेक व्याख्यानों के छोटे-बड़े विवरण भी मिलते हैं। निवेदिता की अन्य रचनाओं में भी विवेकानन्द का उल्लेख हुआ है। निवेदिता की पत्रावली के मुख्य विषय विवेकानन्द ही हैं।

शिक्षित समाज में 'द मास्टर ऐज आइ सा हिम' नामक महाग्रन्थ सुपरिचित है। ईसाई-धर्मशास्त्र के विद्वान तथा आक्सफोर्ड के विख्यात प्राध्यापक ने इस ग्रन्थ को एक उत्कृष्ट कालजयी धार्मिक ग्रन्थ स्वीकार किया है और श्रीअरविन्द के समान मनीषी तथा महायोगी ने इसे स्वामीजी के विषय में लिखित सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कहा है। ... स्वामीजी के विषय में यहाँ उपरोक्त ग्रन्थ के अंशों का संकलन करने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि बाद में, विभिन्न प्रसंगों में, तथ्यों के रूप में इस ग्रन्थ के बहुत-से अंश उपयोग में लाये जायेंगे। इसके अतिरिक्त 'मनस्विनी' खण्ड (जिसमें विश्वविख्यात लेखिका निवेदिता के ग्रन्थों आदि के विषय में विस्तृत परिचय प्राप्त होगा) में इस ('द मास्टर') ग्रन्थ की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि तथा परवर्ती प्रभाव आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा की जायेगी। 'नोट्स ऑफ सम वांडरिंग्स विथ स्वामी विवेकानन्द' ('भ्रमण') के विषय में भी यही नीति अपनायी जायगी।

उपरोक्त दो ग्रन्थों के अलावा भी विभिन्न सूत्रों से विवेकानन्द तथा निवेदिता विषयक बहुत-सी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। हमें अनेक अज्ञात बातें भी प्राप्त हुई हैं। प्रसंगानुसार ये सारे तथ्य इस ग्रन्थ में सर्वत्र प्रस्तुत किये जायेंगे। तथापि जो जानकारियाँ विवेकानन्द तथा निवेदिता की जीवनियों के द्वारा सर्वविदित हैं, उन्हें यथासम्भव संक्षिप्त कर या उनका उल्लेख मात्र करके, हम लोग अज्ञात या अर्धज्ञात तथ्यों पर ही विशेष ध्यान देंगे। परन्तु इसके बावजूद, निवेदिता को लिखित स्वामीजी के कुछ पत्र काफी परिचित होने पर भी, हम छोड़ नहीं सकेंगे, क्योंकि प्रथमत:, निवेदिता की जीवन-धारा को सुनिश्चित करने में इन पत्रों का असीम महत्त्व रहा है; द्वितीयत:, केवल निवेदिता के जीवन-गठन में ही नहीं, अपितु ये पत्र सभी आत्मत्यागी

भारतवासियों के प्राणों में प्रज्वलन्त अग्नि जगा देते थे – और अब भी उनका रक्तप्रवाह बढ़ा देते हैं। जो निवेदिता भावी भारत के लिये प्रेरणादेवी हो उठनेवाली थीं, उन्हें जगाने के लिये लिखी गयीं विवेकानन्द की ये रचनाएँ महाकाव्य के तुल्य महिमा को प्राप्त हुई हैं। विवेकानन्द की इसी प्रकार की उक्तियों का स्मरण करते हुए रोमाँ रोलाँ ने कहा था – 'उनके शब्द महान् संगीत हैं, बीथोवन शैली के टुकड़े हैं, हैंडेल के समवेत गान के छन्द-प्रवाह की भाँति उद्दीपक लय हैं। शरीर में विद्युत्स्पर्श के समान आघात की सिहरन का अनुभव किये बिना, मैं उनकी उस वाणी का स्पर्श नहीं कर सकता, जो तीस वर्ष की दूरी पर (ये बातें १९२८ में लिखी गयी थीं) पुस्तकों के पृष्ठों में बिखरे पड़े हैं। जब वे ज्वलन्त शब्दों के रूप में नायक के मुख से निकले थे, तब तो न जाने कैसे-कैसे आघात और आवेग पैदा हुए होंगे।'

उन शब्दों को सर्वाधिक मात्रा में निवेदिता ने ही सुना था।

निवेदिता को लिखे स्वामीजी के पत्र

['विवेकानन्द साहित्य' में निवेदिता को लिखे गये स्वामीजी के कुल ३१[१] पत्र प्राप्त होते हैं। पहला पत्र ४ अक्तूबर १८९५ ई. का और अन्तिम १२ फरवरी १९०२ का है। इनके बीच करीब सात वर्षों का फासला है। पाठकगण ध्यान देंगे, प्रथम और अन्तिम पत्रों का एक ही वक्तव्य है – उठो! जागो!

हम यहाँ कुछ पत्र या पत्रांश उद्धृत कर रहे हैं। इन पत्रों से विवेकानन्द की दो मूर्तियाँ प्रकट होती हैं; एक में वे जगत्प्रेमी हैं, राष्ट्र के प्रेरणापुरुष हैं और दूसरे में जगत्–जाल का छेदन करने को उत्सुक चिर-वैरागी संन्यासी हैं। निवेदिता का परम सौभाग्य है कि वे एक ही व्यक्ति में मनुष्य की दो परम अभिव्यक्तियों का दर्शन कर सकी थीं।]

* * *

... पवित्रता, धैर्य तथा प्रयत्न के द्वारा सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सभी महान कार्य धीरे धीरे होते हैं।... (इंग्लैंड, ४ अक्तूबर, १८९५)

मेरा आदर्श अवश्य ही थोड़े-से शब्दों में कहा जा सकता है; और वह है – मनुष्य-जाति को उसके दिव्य स्वरूप का उपदेश देना तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे प्रकट करने का उपाय बताना।

यह संसार अन्धविश्वास की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। जो अत्याचार से दबे हुए हैं, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, मैं उन पर दया करता हूँ; परन्तु अत्याचारियों पर मेरी दया और भी अधिक है।

एक बात जो मैं सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट देखता हूँ और वह यह कि अज्ञान ही दुख का कारण है, अन्य कुछ भी नहीं। जगत को प्रकाश कौन देगा? भूतकाल में बलिदान ही नियम था और दुख की बात यह है कि युगों तक ऐसा ही रहेगा। संसार के महान वीरों और सर्वश्रेष्ठ लोगों को 'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय' अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैकड़ों बुद्धों की आवश्यकता है।

संसार के सभी धर्म निष्प्राण और हास्यास्पद हो गये हैं। जगत् को आज जरूरत है चरित्र की। संसार को ऐसे लोग चाहिए जिनका जीवन स्वार्थहीन ज्वलन्त प्रेम का निदर्शन हो। वह प्रेम एक-एक शब्द को वज्र के समान प्रभावी बना देगा।

तुम्हारे भीतर जगत् को हिला देनेवाली शक्ति विद्यमान है – निश्चय ही तुम्हारे सन्दर्भ में यह अन्धविश्वास की बात नहीं है। अन्य लोग भी आयेंगे। ज्वलन्त शब्दों और उससे भी अधिक ज्वलन्त कार्यों की जरूरत है। हे महाप्राण! उठो, जागो! संसार दु:ख से जला जा रहा है – क्या तुम्हें निद्रा शोभा देती है? (लन्दन, ७ जून, १८९६)

जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। मैंने बहुत-से देशवासियों को जगा दिया है; और यही मैं चाहता था। सब कुछ अपने ढंग से, कर्म के नियमों के अनुसार चलता रहे। मेरे लिये इस अधोलोक में कोई बन्धन नहीं है। मैंने जीवन को देखा है, सब स्वार्थ के लिए है – जीवन स्वार्थ के लिए, प्रेम स्वार्थ के लिये, मान स्वार्थ के लिए, सब कुछ स्वार्थ के लिए। मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ और पाता हूँ कि मैंने शायद ही कोई कर्म स्वार्थ के लिए किया हो। यहाँ तक कि मेरे बुरे कर्म भी स्वार्थ के लिए नहीं थे। अत: मैं सन्तुष्ट हूँ; इसलिये नहीं कि मैंने कुछ अच्छा या महान कार्य सम्पन्न किया है; बल्कि इसलिये कि यह संसार इतना क्षुद्र है, जीवन इतना तुच्छ है, जीवन में इतनी विवशता है – मैं मन-ही-मन हँसता हूँ और आश्चर्य करता हूँ कि मनुष्य, जो विवेकी जीव है, ऐसे तुच्छ तथा घिनौने पारितोषिक के लिए इस क्षुद्र स्वार्थ के पीछे दौड़ता है! **(क्रमश:)**

१ स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली में अब स्वामीजी द्वारा लिखे गये ४८ पत्र उपलब्ध हैं।

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (१/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

भरतजी ने एक-एक प्रश्न का बड़ा विलक्षण उत्तर दिया। बोलने खड़े हुये तो ऐसी विनम्रता से कहा –

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।।
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू।
धरमु जाइ सिर पातक भारू।।२/१७६/३-४

– माता, पिता, गुरु की आज्ञा को बिना विचार किए मानना चाहिये। उचित-अनुचित का विचार किये बिना धर्म चला जाता है, पाप लगता है। तो कोई भी व्यक्ति जब भाषण के प्रारम्भ में ऐसा बोले, तो क्या प्रभाव पड़ेगा? किसी को पद दिया जा रहा हो और वह कहे, आजकल तो सभी कहते ही हैं कि मुझे तो पद की कोई आवश्यकता नहीं है, पर गुरुजनों की आज्ञा हम टाल नहीं सकते, इसलिये हम इसे स्वीकार कर लेते हैं। तो श्रीभरत का यह वाक्य तो मानो प्रत्येक व्यक्ति के मन में यही भ्रान्ति उत्पन्न करने वाला था कि अच्छा, राज्य स्वीकार करने की भूमिका बन रही है कि मैं तो अयोध्या का राज्य नहीं लेना चाहता था, पर सब की आज्ञा है, तो मैं कैसे टालूँ? पर धर्म को लेकर उन्होंने जो प्रश्न उपस्थित किया वह बड़े महत्त्व का था। उन्होंने विनम्रता से प्रणाम कर सबको उचित उत्तर देना प्रारम्भ किया – **देत उचित उत्तर सबहिं**। वे मानो गुरुजी से, माताओं से, मन्त्रियों से, प्रजा से, सबसे पूछते हैं –

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई।
जो आचरत मोर भल होई।। २/१७६/५

आप लोग तो जो भी उपदेश रहे हैं, वह मेरे हित के लिये दे रहे हैं। किन्तु उन्होंने पहला वाक्य कहा –

जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें।
तदपि होत परितोषु न जी कें।।२/१७६/६

आप लोग जिस धर्म को बता रहे हैं, वह युक्तियुक्त है, पर मुझे इससे संतोष नहीं हो रहा है। क्या तात्पर्य है इसका?

वह एक बात कही जा सकती है, जिसमें कौशल्या अम्बा ने कह दिया था कि गुरु वशिष्ठ की आज्ञा तो पथ्य है। तो इसका अर्थ मानो यह है कि अयोध्या के लोग रोगी हैं। लिखा हुआ भी है कि अयोध्या में एक महान रोग है। वह रोग कौन-सा है? बोले –

राम बियोग कुरोग बिगोए। २/१५७/७

अयोध्या के सारे नागरिक श्रीराम के वियोग के कुरोग से ग्रस्त हैं। अब श्रीभरत का प्रश्न बड़े महत्व का है। दवा तो केवल दवा के नाते महत्त्वपूर्ण नहीं है। व्यक्ति को जो रोग है, उस रोग के निवारण करने में दवा सक्षम है कि नहीं? जैसे मान लीजिए, किसी सज्जन के पेट में दर्द था और आँख में भी कष्ट था। वे वैद्यजी से दवा लेने गये। उन्होंने एक आँख में लगाने की दवा और एक खाने की दवा दे दी। वे दोनों दवा लेकर आए और आँख में लगाने की दवा को खा लिया और खाने की दवा को आँख में लगा लिया। अब सोचिए, क्या हुआ होगा? उनका आँख का कष्ट कम हुआ होगा कि बढ़ गया होगा? पेट का दर्द ठीक हो गया होगा? इसका अभिप्राय है कि दवा चाहे जितनी अच्छी हो, पर वह किस रोग की दवा है यह महत्त्वपूर्ण है। जो रोग हुआ है, उसे दूर करने के लिये जो दवा उपयुक्त है, वही उस समय अच्छा है। यह बड़े महत्त्व का प्रश्न था कि दवा, धर्म, कर्तव्य निर्णय होने के पहले यह निर्णय हो जाना चाहिये कि उस व्यक्ति का रोग क्या है, उसकी समस्या क्या है? कितना सार्थक प्रश्न था ।

श्रीराम का वियोग कुरोग है। बड़ी सार्थक भाषा है। संसार में अनेक रोग हैं, पर उन रोगों में सब से विचित्र

रोग है, श्रीराम से वियोग का रोग। इसका अर्थ क्या हुआ? ईश्वर जब हमारे जीवन से दूर हो जाय, तो इससे बढ़कर और कोई रोग नहीं हो सकता। ईश्वर की दूरी से बढ़कर कोई कुरोग नहीं है। श्रीभरत का प्रश्न यह था – माँ, जब आप यह कहती हैं कि गुरु वशिष्ठजी का आदेश पथ्य है, दवा है और जब राम का वियोग कुरोग है, तो वियोग का समाधान तो संयोग से होगा। बड़ी सीधी-सी बात है। अगर वियोग का कुरोग है, तो संयोग के द्वारा ही वह रोग मिटेगा। उनका सूत्र, उनका तात्पर्य मानो यह था कि रोग कुछ और है और समाधान कुछ और दिया जा रहा है। फिर वही प्रश्न है कि वैद्य और डॉक्टर कितना भी योग्य क्यों न हों, पर दवा के परिणाम का निर्णय वह नहीं कर सकता। वह तो रोगी ही बता सकता है कि उसे दवा से लाभ हो रहा है कि नहीं हो रहा है। तो श्रीभरत ने कहा कि गुरु वशिष्ठ ने जो दवा बताई है, वे कितने ही उच्चकोटि के वैद्य क्यों न हों, कितनी भी उच्चकोटि की दवा क्यों न हो, पर यह जो राम के वियोग का कुरोग है, इसे दूर करने में सक्षम है कि नहीं। इसका जन्म कैसे हुआ? इसका बड़ा भारी विश्लेषण है। उस पूरे प्रसंग को जब पढ़ेंगे, तब धर्म की एक ऐसी अद्‌भुत व्याख्या आपको मिलेगी। मनुष्य के जीवन में जो बुराइयाँ आती हैं, वे कैसे आती हैं? मनुष्य के जीवन में ईश्वर से दूरी कब आती है? श्रीभरत का संकेत यह था कि जिन कारणों से यह वियोग का कुरोग उत्पन्न हुआ है, उन कारणों का निवारण करना दवा है। और जो वियोग का कारण है उसको अनदेखा कर दें और वियोग की बात को भुला दें, कोई ऐसा समाधान दे दें, जिससे तात्कालिक समाधान होता हो, स्थायी नहीं, तो यह ठीक नहीं है। जैसे होता है न ! कई लोग शराब पीते हैं। वे बेचारे कहते भी हैं कि मैं जानता हूँ कि यह गलत है। पर उनसे पूछें कि तो फिर क्यों पीते हो? तो एक शब्द में कहते हैं, गम भुलाने के लिये। मानो संसार में जो लड़ाई-झगड़े अन्याय हो रहे हैं, मैं उसे देखता हूँ, तो उसको भुलाने के लिये। अब क्षण भर के लिये या कुछ घंटों के लिये उसे भुला देना, क्या यह सचमुच कोई वास्तविक दवा होगी? तो मानो श्रीभरत का अभिप्राय यह था कि अगर भुला देने को दवा मान ली जाय, तब तो मनुष्य नशे में ही पड़ा रहेगा। वह नशा भी कितनी देर का, वह तो उतर जाने वाला नशा है। इसलिये श्रीभरत ने स्पष्ट उत्तर दिया था –

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार।।२/१८०

गुरुदेव राज्य की सुरा पीने के लिये कह रहे हैं, मैं तो नहीं समझ पाता कि यह रोग की उचित औषधि है। श्रीभरत ने सूत्र यह दिया –

जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें।
तदपि होत परितोषु न जी कें।। २/१७६/६

गुरुदेव, आप सब लोग ठीक कह रहे होंगे, पर मुझे सन्तोष नहीं हो रहा है, मेरे जी में शान्ति नहीं मिल रही है। तब वे प्रार्थना करते हैं –

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू।
मोहि अनुहरत सिखावनु देहू।।२/१७६/७

भरतजी कहते हैं – गुरुदेव, आप मेरी ओर देखिए। माने बहुत भीड़-भाड़ हो और वैद्य दूसरे की नाड़ी पकड़कर दूसरे को दवा बताने लगे, तो बुद्धिमान रोगी कहेगा कि महाराज इनकी नाड़ी नहीं, मेरी नाड़ी पकड़िए भरतजी ने कहा महाराज मोहि अनुहरत – मुझे देखकर दवा दीजिये। लगता है आपने रोगी को नहीं देखा और दवा का निर्णय कर लिया। मेरी ओर देखिए कि मेरी समस्या क्या है, तब दवा का निर्णय कीजिए कि मेरे लिये उपयुक्त दवा क्या है। यह बड़े महत्व का प्रश्न है, बस यह सूत्र हम सबको ध्यान में रखना चाहिये।

जिन मन्त्रियों, पुरवासियों, गुरु और माताओं ने उनसे राज्य लेने का अनुरोध किया था, उनसे पूछा गया कि आप जिस राज्य को लेने के लिये कह रहे हैं, क्या यह शास्त्रोचित है? अगर शास्त्रों का उद्देश्य भोगों का समर्थन हो, या शास्त्र का उद्देश्य स्वार्थ का समर्थन हो, तो क्या इसके लिये शास्त्रों को लिखने की आवश्यकता है? वह पाठ तो हम लोग बिना पढ़ाए हुए इतना सीखे हुए हैं कि उसे इतना पढ़ाने की क्या आवश्यकता है कि स्वार्थी बनिए, भोगी बनिए। वह तो हमारा स्वभाव है। धर्म का जो उद्देश्य होगा, वह तो मनुष्य की जो सहज प्रवृत्ति होगी, उसे बदलना होगा। मनुष्य की जो स्वाभाविक प्रकृति है, मनुष्य का जो विषयों की ओर, भोगों की ओर जो एक सहज आकर्षण है, उसका वह नियमन करना चाहता होगा, समर्थन नहीं चाहता होगा। अगर वह समर्थन करता हुआ दिखाई भी देता होगा, तो वह सामंजस्य करने के लिये। धर्म प्रारम्भ में ही यह नहीं कह देता कि स्वार्थ का त्याग कर दीजिए। मैं आशा करता हूँ कि आप एकाग्रता से इस

पर दृष्टि डालेंगे।

मान लीजिए कि शास्त्रों ने भोग का आदेश दिया। जैसे शास्त्र जब यह कहता है कि विवाह करो, तो इसका अर्थ लगता है कि शास्त्र भोग का समर्थन करता है। जब शास्त्र अर्थ की बात करता है तो लगता है लोभ का समर्थन करता है। पर आप युक्तिसंगत ढंग से विचार करके देखिए, तो वह क्रमश: अगली कक्षाओं में आगे ले जाने के लिये है। भोगों की असीम वासना को सीमित करने के लिये, नियमित करने के लिये वह विवाह का विधान करता है। भोगों से कैसे व्यक्ति क्रमश: अपने को विरत करे, इसके लिये उसने थोड़ी छूट दी। इसका अर्थ है कि जैसे डॉक्टर या वैद्य यदि यह देख लेता है कि रोगी इन चीजों को इतनी सरलता से नहीं त्याग सकता, तब वह उसमें थोड़ी-सी छूट दे देता है। जैसे हनुमानजी जब रावण को उपदेश देने लगे, तब हनुमानजी ने वैद्य के रूप में रावण के सभी रोगों का मूल कारण जो मोह है, उसे बता दिया और उसकी दवा बता दी। उन्होंने कहा –

मोह मूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।५/२३

हे रावण ! मोह के कारण ही तुम्हारे जीवन में सारी बुराइयाँ उत्पन्न हुई हैं। उदारतापूर्वक उन्होंने कहा तुम तमोगुणी अभिमान का त्याग करो। तो क्या इसका अर्थ यह है कि हनुमानजी चाहते हैं कि तमोगुणी अभिमान छोड़कर और अन्य रजोगुणी, सत्त्वगुणी अभिमान रावण के जीवन में बना रहे? ऐसा नहीं है, पर वे जानते हैं कि रावण से यदि यह कह दिया जाय कि तुम सम्पूर्ण अभिमान का एक साथ त्याग कर दो, तो उसके लिये असम्भव है, इसलिये थोड़ा-थोड़ा करके छोड़ो। मानो वे कहते हैं, चलो जाने दो, राजा हो, तो रजोगुणी अभिमान रहने दो, पर तमोगुणी अभिमान तो छोड़ दो। उसका उद्देश्य था कि पहले तमोगुणी अभिमान छुड़ाया जाय, फिर रजोगुणी अभिमान छुड़ाया जाय, उसके बाद सतोगुणी अभिमान छुड़ाया जाय। यह एक क्रम है। तो शास्त्रों में जहाँ पर भोगों की बात कही गई है, वह व्यक्ति को भोगों के नियमन के लिये और क्रमश: उसको ऊपर उठाने के लिये कही गई है। साथ-साथ जहाँ स्वार्थ का समर्थन किया गया, वह स्वार्थ में सामंजस्य के लिये किया गया। एक व्यक्ति का स्वार्थ दूसरे व्यक्ति से टकराता है, इसलिये शास्त्र ने ऐसा विधान किया कि हम अपने स्वार्थ के साथ-साथ दूसरे के स्वार्थ का भी सम्मान करें, और दोनों स्वार्थों का सांमजस्य करने के लिये, वह कहीं-कहीं स्वार्थ का समर्थन करता हुआ दिखाई देता है, पर उसका अंतिम उद्देश्य दूसरा होता है। श्रीभरतजी ने मानो यही कहा कि राज्य लेने के लिये भी इतने बड़े भाषण की आवश्यकता है क्या कि इतने लोग शास्त्र की, धर्म की, गुरु, माता, पिता, ईश्वर की दुहाई देकर कहें कि राज्य ले लो? इसके बिना ही लोग राज्य पाने के लिये न जाने क्या-क्या करते हैं, लड़ते हैं, छीन लेते हैं। भरतजी ने कहा, आप लोग जरा गहराई से विचार करके देखिए। उन्होंने कई प्रश्न किये – अच्छा, आप लोग कहते हैं कि यह धर्म है, तो धर्म के साथ उन्होंने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न किया – क्या धर्म व्यक्ति के उत्थान के लिये है या सबके उत्थान के लिये है? साधना तो व्यक्ति ही करेगा। तब यों कह सकते हैं कि वह तो व्यक्ति के उत्थान के लिये है। किन्तु यदि वह व्यक्तिगत उत्थान ही रह जाय, तब तो वह सर्वोत्कृष्ट बात नहीं है। इसी का संकेत आपको रामचरितमानस में मिलेगा।

भगवान श्रीराम के द्वारा धनुर्भंग हुआ। महाराज श्रीजनकजी ने महर्षि विश्वामित्र के चरणों में प्रणाम करके कहा –

मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई।
अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं।।१/२८५/६

इन दोनों भाइयों ने हमें कृतकृत्य कर दिया। किन्तु अब आप बताइये कि मैं क्या करूँ? अगर कृतकृत्य हो गये, तो अब आगे क्या करने का प्रश्न क्यों? उसका उत्तर यह है कि मानो महापुरुष, राजर्षि जनक जैसे महापुरुष भी कृतकृत्य होने के बाद संत से पूछते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि संसार में अधिकांश लोगों का जो कर्म होता है, वह स्वार्थ के लिये होता है। जो कृतकृत्य हो गया, उसे कर्म करने की आवश्यकता नहीं रह गई। किन्तु संत ने यह कहा – हाँ, अब तुम्हें कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, पर तुम महाराज दशरथ के पास पत्र भेजो और दशरथ जी बारात लेकर आवें। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (५१)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – क्या तम से बाहर निकला जा सकता? सत्त्व तक नहीं पहुँचने पर तम से निस्तार का मार्ग कैसे पाऊँगा?

महाराज – अरे, चलने की बात कही गई है। तम के कारण यदि बैठे रहोगे, तब तो और आगे नहीं बढ़ सकोगे। इसीलिए कहता हूँ, तम को स्वीकार करके ही आगे बढ़ो। आगे बढ़ना आरम्भ करते ही 'तम' स्वयं ही चला जायेगा और धीरे-धीरे 'सत्त्व' आ जाएगा।

संन्यासी का जीवन अकेले नहीं समझा जा सकता है, इसीलिए तो संघ है, यहाँ परस्पर सहायता से सभी लोगों का कल्याण होगा। अभी भी हम लोगों का सब कुछ ठीक है विघटन नहीं हुआ। किन्तु यह तो केवल दूसरी पीढ़ी (second generation) चल रही है – ठाकुर के शिष्यगण और उनके बाद ही तो हम लोग हैं। हमलोगों के बाद तुम लोग आओगे, अनुकूल परिवेश बनाओगे, इसके बाद बहुत से लोग योगी होकर जन्म लेंगे। तब तक समाज में भी लोगों का विकास होगा, समाज भी अच्छा होगा।

२-११-१९६०

प्रश्न - संयोगवश ऐसी अनेक घटनाएँ घटती हैं, जिनमें मेरी भूमिका नहीं रहती। क्या उन्हें ईश्वर की कृपा कहना ठीक नहीं है?

महाराज - नहीं, मैंने पूर्व-पूर्व जन्मों में सम्भवत: कोई अच्छा कर्म किया था, जिसके फलस्वरूप घटनाएँ घट गईं। किन्तु यह घटना ईश्वरीय विधान से घटी, उस पर विश्वास करना, उतनी ही उनकी कृपा है।

फिर ज्ञानी की दृष्टि से विचार करके देखो – जिस प्रकार मेरा कुर्ता गंदा होने पर मैं उसे साफ करता हूँ, फट जाने पर सिलाई करता हूँ, बिल्कुल फट जाने पर उसे फेंक देता हूँ, उसी प्रकार हमारा सम्बन्ध इस देह के साथ है। किन्तु यह मैं 'कच्चा मैं' नहीं, 'पक्का मैं' है। इसे नहीं समझने पर केवल भाषणबाजी होगी, पाखंड, दिखावा होगा। ये सब बातें केवल सुशिक्षित, रुचिसम्पन्न लोगों के लिए हैं, मुमुक्षुओं के लिये हैं। साधारण लोगों के लिए नहीं हैं। साधारण लोगों के लिए द्वैतवाद को छोड़कर अन्य कोई मार्ग नहीं है। कितने ही बुद्ध, ईसा आए, क्या कुछ कर सके? या स्वामीजी ही क्या करेंगे? किन्तु मुमुक्षुओं का कल्याण होगा। 'परित्राणाय साधूनाम्' – सज्जनों की रक्षा होगी। इस द्वैतवाद को लेकर धरती पर कितनी गड़बड़ हुई है। मुसलमान, ईसाई, हिन्दुओं में अनेक मत हैं। कृष्णोपासक, शिवोपासक, काली-उपासकों के दल कलह और मारपीट करते हैं। धर्म के नाम पर पाखण्ड होता है। दस कट्टर लोग मिलकर एक व्यक्ति को अवतार घोषित करते हैं, फिर पाँच लोग भय से उसे मान लेते हैं। बस, हो गया एक अवतार! इनसे तो नास्तिक अच्छे हैं।

प्रश्न – ठाकुर ने कहा है – ब्रह्म जीवजगतविशिष्ट है। अर्थात् बेल का खोपड़ा, बीज निकाल देने पर वजन कम हो जाएगा, क्या इससे ठाकुर विशिष्टाद्वैतवादियों के समर्थक हैं?

महाराज – ठाकुर ने दिखाया कि निर्गुण ब्रह्म सत्य है। लेकिन क्या साकारवादी ब्रह्म को नहीं देखते हैं? वे लोग भी जो देखते हैं, वह भी ब्रह्म है, फिर विशिष्टाद्वैतवादी भी उसी ब्रह्म को देखते हैं।

ठाकुर साधना की उच्च अवस्था पर जाते थे और वहाँ से सामान्य धरातल पर आकर दिखाते थे कि सभी अवस्थाएँ सत्य हैं। जिस वस्तु से छत बनी है, उसी से सीढ़ी भी बनी है। ठाकुर निर्गुण से उतरकर विशिष्टाद्वैत, द्वैत पर रहते थे, किन्तु द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी लोग केवल इसे ही एकमात्र सत्य समझते हैं। 'येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्लोक को पढ़कर देखो। **(क्रमशः)**

स्थितप्रज्ञ संन्यासी स्वामी सारदानन्द

स्वामी मुक्तिमयानन्द

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, चेन्नई

एक कक्ष में कई भक्तगण एकत्रित हैं। श्रीरामकृष्ण एक-एक कर सबसे पूछ रहे हैं कि वे ध्यान में देव-देवी के किस रूप का दर्शन करना चाहते हैं। सबको विश्वास हो रहा है कि सद्गुरु के लिए हमारे अभीप्सित ईष्ट का दर्शन कराना हस्तामलकवत् है। सब अपने-अपने प्रिय देव-देवी के बारे में उन्हें बता रहे हैं। सहसा उन्होंने एक युवा-भक्त से पूछा, ''तुम कौन-सा रूप देखना चाहते हो?'' युवा शिष्य ने थोड़ा सोचकर कहा, ''मैं भगवान के किसी भी विशिष्ट रूप के दर्शन की आकांक्षा नहीं रखता। मैं तो उस परमात्मा का दर्शन प्रत्येक जीवमात्र में करना चाहता हूँ।'' श्रीरामकृष्ण ने उत्तर से प्रसन्न होकर उससे स्मित हास्य के साथ कहा, ''अरे, वह तो साधना की सर्वोच्च अवस्था है। वह ऐसे अचानक नहीं मिलती।'' शिष्य ने कहा – ''पर मुझे उससे कम किसी से भी संतुष्टि नहीं होगी।'' तब श्रीरामकृष्ण ने कहा – ''ठीक है, तुम्हारा होगा।'' ये शिष्य थे स्वामी सारदानन्द।

परवर्तीकाल में अपने गुरु के आशीर्वाद के बारे में स्वामी सारदानन्द जी ने कहा था, 'मैंने किसी देव-देवी के विशिष्ट दर्शन तो नहीं किये, किन्तु श्रीठाकुर से जो प्रार्थना की थी, उनकी कृपा से कुछ अनुभव कर सका हूँ।''

स्वामी सारदानन्द जी का जन्म २३ दिसम्बर, १८६५ में एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। उनमें धार्मिक संस्कार और सेवा-भाव बचपन से ही विकसित थे। अपनी ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने के लिए वे केशवचन्द्र सेन के ब्राह्मसमाज में गए थे। युवक सारदानन्द ब्राह्म-पद्धति से उपासना करने लगे थे। ब्राह्मसमाज की विचारधारा को पढ़कर वे ईश्वरावतार आदि के विषय में संशयग्रस्त भी हुए। किन्तु श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में आकर उनके ईश्वरविषयक सभी संशयों का समूल नाश हुआ। एक शिष्य ने जब श्रीठाकुर के अवतार होने के सम्बन्ध में संदेह व्यक्त किया, तब शरत् महाराज ने कहा था, ''देखो, हम तो पहले से भक्त बनकर उनके पास नहीं गये थे। ब्राह्मसमाज से जुड़े थे। हमारा मन भी नास्तिकता, अविश्वास आदि से पूर्ण था। ठाकुर को एक अवतार के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से हम उनके पास नहीं गये थे। किन्तु हमने देखा कि हम अपने बारे में जितना जानते हैं, ठाकुर उससे भी अधिक हमारे बारे में जानते हैं। सदैव उनकी ही बात सत्य सिद्ध होती थी, तब और क्या करना? तब उन्हें अवतार मानने पर बाध्य हुआ।''

श्रीरामकृष्ण ने स्वामी सारदानन्द जी को जो 'सर्वभूतों में ईश्वर दर्शन' का आशीर्वाद दिया था, उसी की झलक हमें गीता में प्राप्त होती है। सारदानन्दजी का जीवन गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ गुणों की समष्टि था। क्रोध, मोहादि रिपुओं से परे उनका मन 'आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्' – समुद्र की तरह स्थितप्रज्ञ अवस्था में स्थित था। रामकृष्ण मठ-मिशन के द्वादश संघाध्यक्ष, स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज स्वामी सारदानन्दजी के बारे में कहते हैं – ''क्रोधित होने पर भी वे अधिक-से-अधिक 'बंदर' कहकर डाँटते थे।''

गीता में अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछते हैं –

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।

अर्थात् ''ब्रह्मैक्य के ज्ञान से जिसकी बुद्धि परमात्मा में स्थित रहती है, ऐसा स्थितप्रज्ञ वाला व्यक्ति कैसे बोलता है? संयमित मन वाले पुरुष का आचरण-विचरण कैसा होता है?''

सारदानन्द जी महाराज का जीवन देखने से उनमें स्थितप्रज्ञ पुरुष का प्रत्येक लक्षण दृष्टिगोचर होता है। स्वामी निखिलानन्दजी लिखते हैं, ''उनके सदृश कर्मकुशल व्यक्ति अति विरल ही देखने को मिलते हैं। स्वामी सारदानन्दजी में गीतोक्त 'स्थितप्रज्ञ' के लक्षण पूर्णतया विद्यमान थे। किसी भी सुखद या दुखद परिस्थिति में उन्हें विचलित होते नहीं देखा। जय-पराजय उनके लिए समान थे। उनके मुख पर अनुकूल स्थिति में उदासीनता तथा प्रतिकूल स्थिति में

हास्य देखा है। प्रासंगिक उन्मादता में वे कभी कोई कार्य प्रारम्भ नहीं करते थे। कार्य की मोहिनीशक्ति उन्हें कभी छू न पाती थी। स्वयं को साक्षीस्वरूप द्रष्टा और अनासक्त रखकर कैसे सभी कार्य निर्लिप्त भाव से किये जा सकते हैं, इसका परिचय उनके हर कार्य में मिलता था। वे एक आदर्श कर्मयोगी थे। जिस उत्साह से वे कार्यक्षेत्र में उतर कर हर कार्य को सुसम्पन्न कर सकते थे, वैसे ही बिना द्विधा स्वयं को कर्मक्षेत्र से अलग करने की भी शक्ति रखते थे।

सर्वकर्मफल ईश्वर को समर्पित कर उन्होंने आजीवन निष्काम और नि:स्पृह भाव से प्रत्येक कार्य किया था। बातचीत, चलना-घूमना और आचार-व्यवहार में ऐसा संयत भाव किसी और के जीवन में मैंने नहीं देखा। संयम का भाव जैसे मूर्तिमान रूप लेकर शरत् महाराज के देह और मन के रूप में प्रकट हुआ था। पवित्रता, आत्मनिर्भरता, आदि समस्त सद्गुणों ने उनके जीवन में सर्वोच्च पराकाष्ठा प्राप्त की थी। सर्वोपरि था उनका अलौकिक धैर्य और क्रोध-रहित स्वभाव।''

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण उत्तम योगी के लक्षण बताते हुए अर्जुन से कहते हैं –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। ६.२९।।

– 'परमात्मा में एकात्म भाव से युक्त योगी आत्मा को सर्वभूतों में व्याप्त और सर्वजीवों को आत्मा में स्थित देखता हुआ, सबके प्रति समदर्शी रहता है।'' इस एकात्म भावप्राप्त योगी के मन की गति कैसी होती है, वह किस उच्चावस्था को प्राप्त करता है, इसे श्रीकृष्ण कहते हैं –

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति। ६.३०।।

अर्थात् ''ऐसा योगी जो मुझ परमात्मा को सर्वत्र व्याप्त और समस्त चराचर सृष्टि को मुझमें ही अवस्थित देखता है, मैं उससे कभी अदृश्य नहीं होता, न वह (योगी) कभी मेरे से पृथक् होता है।'' इस सर्वोत्तम दर्शन की प्रार्थना करने वाले स्वामी सारदानन्दजी का जीवन उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों से परिपूर्ण था।

स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव का भार दिया था। मठ-मिशन की स्थापना के प्रारम्भिक काल में उन्हें अनेक विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। किन्तु अपने धीर-गम्भीर स्वभाव के अनुकूल वे किसी भी परिस्थिति से विचलित नहीं होते थे।

श्रीमाँ सारदा देवी के रहते समय वे उन्हें ही अपना मार्गदर्शक मानते थे। सभी स्थितियों में धीर-स्थिर रहना उन्होंने माँ से सीखा था। श्रीमाँ के गुणों को आत्मसात् करने वाले शरत् महाराज ने एक बार माँ के इस अपूर्व दैवी गुण के बारे में कहा था, ''हम सबको तो देखते हो, पान में चूना भी कम-अधिक हो जाये, तो क्रोध से लाल हो जाते हैं। किन्तु श्रीमाँ को देखो, उनके भाई कितना झंझट नहीं करते, किन्तु वे वैसी ही धीर-स्थिर बनी रहती हैं।'' श्रीमाँ के भाईयों के घर-सम्पत्ति का बँटवारा, श्रीमाँ के यात्रा-निवास आदि अनेक कार्यों की व्यवस्था स्वामी सारदानन्द जी महाराज श्रीमाँ की आज्ञानुसार करते थे। इसीलिये माँ स्वयं भी कहती थीं, ''मेरा भार शरत् के सिवा कोई नहीं उठा सकता।''

श्रीठाकुर और माँ के उपदेशों की नींव पर महाराज का उच्च महान जीवन अवस्थित था। वे प्रत्येक परिस्थिति में मानसिक संतुलन बनाकर, ईश्वर पर आश्रित होकर सभी कार्य निष्ठापूर्वक करते थे। श्रीमाँ ने स्वयं एक बार कहा था, ''शरत् (सारदानन्द) साधारण ब्रह्मज्ञानी नहीं है। वह केवल सर्वजीवों में ब्रह्मदर्शन ही नहीं करता, अपितु वह सब नारियों में मुझे और सब पुरुषों में श्रीठाकुर को देखता है। शरत् जैसा हृदयवान व्यक्ति ढूँढ़ना कठिन है।''

एक दिन ठाकुर दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ बैठे थे। गणेशजी के बारे में चर्चा चल रही थी। उनके चरित्र, उनकी मातृभक्ति आदि का वर्णन करते हुये ठाकुर जब उनकी मुक्त कंठ से सराहना करने लगे, तब शरत् अचानक कह उठे, ''मुझे गणेशजी का चरित्र सर्वाधिक प्रिय है। वे ही मेरे आदर्श हैं।'' 'नहीं' श्रीरामकृष्ण ने उन्हें तुरन्त संशोधित करते हुए कहा, ''गणेशजी तुम्हारे आदर्श नहीं हैं, तुम्हारे आदर्श हैं शिव। तुम्हारे भीतर शिव सदृश सभी गुण विद्यमान हैं। सर्वदा अपने को शिव और मुझे अपनी शक्ति

मानना। मैं ही तुम्हारी सब शक्तियों का आधार हूँ।'' यद्यपि उच्च आध्यात्मिक महापुरुषों का यह वार्तालाप हमारी बुद्धि से परे है, परन्तु जिन विषम परिस्थितियों में स्वामी सारदानन्द जी ने सर्वसहिष्णु प्रकृति का परिचय दिया था, वह नीलकण्ठ महादेव के विष-पान के समान है।

स्वामी सारदानन्द

वराहनगर मठ में रहते समय और हिमालय आदि के भ्रमण में वे गहन साधना में निमग्न हुए थे और उन्होंने आध्यात्मिक राज्य की उच्च भावावस्था प्राप्त की थी। एक दिन ऋषिकेश में कठोर तपस्यारत सारदानन्दजी ने अपने साथी स्वामी कृपानन्द से कहा था, ''ईश्वर की कृपा से आज मैंने अपने को मन से पृथक कर लिया है। मन के कार्य-कलाप अब मुझे मोहित या भ्रमित नहीं कर पायेंगे। अब मैं केवल एक साक्षी – द्रष्टा हूँ।''

स्वामी सारदानन्द जी ने श्रीरामकृष्ण देव का विस्तृत जीवन चरित 'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग' की रचना की थी। यह रचना उनकी कितनी प्रामाणिक थी, यह हमें इस घटना से ज्ञात होता है –

एक दिन उनके सेवक सातु महाराज (स्वामी असितानन्द) ने हठ किया कि उन्हें (स्वामी सारदानन्दजी को) निर्विकल्प समाधि हुई है कि नहीं, यह बताना पड़ेगा। महाराज ने उत्तर टालने की बहुत चेष्टा की, किन्तु सातु महाराज भी छोड़नेवाले नहीं थे। अन्त में सारदानन्दजी ने कहा, ''श्रीरामकृष्णलीला-प्रसंग में निर्विकल्प समाधि का वर्णन पढ़ा है न? जान लो, लीलाप्रसंग में मैंने कुछ भी बिना स्वयं अनुभव किये नहीं लिखा।''

महाराज का दृढ़ विश्वास था कि तंत्र और वेदान्त के मूल उपदेश समान हैं। जीवब्रह्मैक्य या जीव-शिव का मिलन साधना की फलश्रुति है। इसी भाव को लेकर वे तंत्र साधना में प्रवृत्त हुए थे और उन्हें अभीष्ट की प्राप्ति हुई थी। इसी अनुभूति के आधार पर वे अपनी पुस्तक 'भारत में शक्ति पूजा' में लिखते हैं, 'जिनकी करुणा से ग्रन्थकार (सारदानन्दजी) समस्त नारी मूर्तियों के भीतर श्रीजगदम्बा का विशेष आविर्भाव और शक्ति-प्रकाश की अनुभूति करके धन्य हुए हैं, उन्हीं के चरणों में यह पुस्तक भक्तिपूर्वक अर्पित है।' श्रीमाँ के आशीर्वाद और स्वामी ब्रह्मानन्दजी की आज्ञा से तंत्र साधना कर सब नारियों में जगन्माता के दर्शन कर वे धन्य हुए थे।

स्वामी अशेषानन्द जी लिखते हैं, '''घोर कर्म में भी सम्पूर्ण प्रशान्ति'– गीता का यह आदर्श ही उनका जीवनादर्श था। निरन्तर कार्यों में वे व्यस्त रहते, पर किसी भी कार्य में उनकी बिन्दुमात्र भी आसक्ति नहीं रहती थी। श्रीमाँ की सेवा हो या दैनंदिन का हिसाब-किताब, सभी कार्य उनके लिए पूजास्वरूप थे। अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में भी वे हिमालय की तरह अटल-अचल रहते। कभी भी उनके मुख पर थकान या उबाहट नहीं दिखी।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''अगर किसी व्यक्ति के चरित्र का सच्चा मूल्यांकन करना हो तो उसकी बड़ी-बड़ी उपलब्धियों को मत देखो । देखो कि वह व्यक्ति अपने साधारण दैनंदिन कार्य किस निष्ठा से करता है? दैनंदिन छोटे-छोटे कार्यों के प्रति निष्ठा ही किसी महान व्यक्ति के चरित्र की सच्ची पहचान है।'' स्वामी सारदानन्दजी का मन छोट-छोटी बातों में भी कितना सतर्क था, इसके बारे में स्वामी गौरीश्वरानन्दजी लिखते हैं –

'एक दिन मैं उद्‌बोधन में महाराज के कार्यालय में उनकी कलम से पत्र लिख रहा था। तब फाउण्टन पेन का आविष्कार नहीं हुआ था। अत: लकड़ी की मेज पर निब लगाकर उसे बार-बार दवात् से स्याही लेकर डुबाकर लिखना होता था। पूजनीय शरत् महाराज लिखने के बाद निब को धोकर-पोंछकर रखते थे । उस दिन वे जैसे ही लिखने बैठे, तो तुरन्त पूछा 'किसी ने मेरी कलम का उपयोग किया है क्या? मैं पास में ही बैठा था। मैंने कहा, 'महाराज मैंने आपकी कलम-दवात् उपयोग की थी । पर आपने कैसे जाना कि किसी ने इसका उपयोग किया है? मैंने तो ठीक स्थान पर रख दिया था।'' तब महाराज बोले – ''तुमने तो अनाड़ी की तरह काम पूरा होते ही कलम का मुख इधर-उधर करके रख दिया। मेरी लाल और काली स्याही के साथ उपयोग होने वाली कलम के मुख एक ही ओर रहते हैं और तुमने स्याही लगी हुई कलमें इधर-उधर मुख कर के रख दी थी। इसीलिए समझ गया कि किसी अनाड़ी ने बिना धोये ही इन्हें रख दिया है। **(क्रमशः)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (१३)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

– ठाकुर ने मथुरबाबू के बारे में कहा था, उसे पुन: आना होगा, क्योंकि उसके मन में वासना थी।

महाराज – हाँ, उन्होंने कहा था, आकर कहीं राजा-वाजा होगा। राजा बनकर भोग करेगा, दुख भोगेगा। क्योंकि राजा बनकर आना, माने सारा संकट अपने कन्धों पर लेना है।

– महाराज, जन्म-ग्रहण का अर्थ ही तो दुख भोगना है।

महाराज – हाँ, ठाकुर ने कहा है, मथुर का भोग है, उसमें वासना है। उनकी भोग-वासना थी। यहाँ तक कि उन्होंने हृदयराम के सम्बन्ध में भी कहा था कि उसे पुन: आना होगा। क्योंकि वह भी भोग-वासनारहित नहीं था।

– हृदय को ठाकुर का इतना संग मिला, इतनी सेवा की, तब भी उनकी मुक्ति नहीं हुई।

महाराज – नहीं हुई। इसलिए हमलोगों की क्या गति होगी ! बुद्धिमान समझ लो।

प्रश्न – ठाकुर कहते हैं – शुद्ध मन और शुद्ध आत्मा एक है। किन्तु मन तो जड़ वस्तु है, प्रकृति से उत्पन्न है। वह कैसे आत्मा से एक होगा?

महाराज – मन ब्रह्म में आरोपित वस्तु है। नहीं तो, उसका प्रकाश नहीं होता। क्यों आरोपित कह रहा हूँ? क्योंकि चैतन्य में आरोपित होने से ही प्रकाश होता है। ब्रह्म में मन आरोपित होने पर ही मन का प्रकाश होता है। इसलिए मन ब्रह्म में आरोपित है। उस मन का अर्थ हुआ मानसावच्छिन्न ब्रह्म। तो शुद्ध होने पर क्या होगा? आरोप का लोप होगा। तब क्या रहेगा? ब्रह्म रहेगा। हिसाब मिल गया? शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि एक। ठाकुर कहते हैं, शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि एक। शुद्ध बुद्धि और शुद्ध आत्मा एक। एक ही बात हुई।

– भगवान श्रीकृष्ण गीता में श्लोक कहते हैं –

न मां कर्माणि लिम्पन्ति, न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।४/१४।।

महाराज ! भगवान कर्म से नहीं बँधते हैं, कर्मफल से उनका बन्धन नहीं होता है, यह जानने के बाद साधक का कर्म से बन्धन नहीं होगा। क्या दोनों एक समान ही हैं?

महाराज – कहा जा रहा है, वह साधक कर्म से नहीं बँधता है। भगवान शरीर धारण करके भी कर्मों के बन्धन से बद्ध नहीं हैं। साधक भी जानेगा –शरीर-धारण करने पर भी मैं कर्म-बन्धन से बद्ध नहीं हूँ।

– साधक भगवान के गुणों या स्वरूप का अपने में आरोप करता है, क्या यह ऐसा ही है? लेकिन क्या हमलोग कर्म के द्वारा मुक्त हो रहे हैं? यह प्रश्न रह जाता है। भगवान तो पूर्णकाम हैं। हमलोग तो वैसे नहीं हैं।

महाराज – हमलोगों के जानने का अर्थ है जानने की चेष्टा करना। जैसे तुमने कहा – आरोप करना। यही बात है। प्रारम्भ में ही पूर्णत: ज्ञात नहीं हो जाता है। ऐसे ही जान लेने से वह कर्म के द्वारा बद्ध नहीं होता। यही बात है।

प्रश्न – महाराज। हमलोगों की ऐसी भावना है कि गृहस्थ पंडित विद्वान से नहीं पढ़ेंगे, साधु से पढ़ेंगे।

महाराज – गृहस्थ या साधु ऐसा भेद क्यों कर रहे हो? तत्त्वज्ञ या तत्त्वान्वेषक से पढ़ा जाता है। **(क्रमश:)**

भारतीय चिन्तन की देव-दृष्टि : एक ऐतिहासिक पर्यालोचन

राजलक्ष्मी वर्मा

प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

देवता या ईश्वर और मानव-मन का सम्बन्ध उतना ही पुराना है जितनी कि यह मानव सृष्टि है। प्रत्येक युग में, सभ्यताओं के आवर्तन-विवर्तन में प्रत्येक संस्कृति ने एक ऐसी शक्ति या सत्ता का साक्षात्कार किया है, जो मनुष्य की अपेक्षा अधिक समर्थ है और उसके परिवेश और आसपास घटने वाली घटनाओं का नियंत्रण करती है। सभ्यताओं के प्रारम्भिक युग में सर्वशक्तिमान सत्ता की यह अवधारणा बड़ी स्थूल और असंस्कृत-सी रही, जिसने मनुष्य के मन में स्नेह की अपेक्षा भयमिश्रित आदर का संचार ही अधिक किया और जिसे प्रसन्न रखने के लिए उसने उतने ही स्थूल और आदिम साधनों का उपयोग किया। चूँकि यह शक्ति अदृश्य थी, उसे दिखलायी नहीं देती थी, इसलिए उसने किसी काष्ठ-खण्ड या प्रस्तर-खण्ड से उसकी एक अनगढ़-सी प्रतिमा बना ली जिसके आगे मस्तक झुकाकर वह सभी आपदाओं से स्वयं को सुरक्षित अनुभव करने लगा।

जैसे-जैसे मनुष्य का बौद्धिक विकास हुआ, उसका चिन्तन परिष्कृत हुआ और वह अधिक संवेदनशील बना, वैसे-वैसे उसकी ईश्वर-विषयक धारणा भी परिवर्तित होती गयी। जैसे-जैसे मनुष्य अपने व्यक्तित्व के सूक्ष्म और अभौतिक पक्षों को पहचानता गया उसका हर प्रत्यय, उसकी हर कल्पना, हर परिभाषा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गयी। प्रत्येक संस्कृति की ईश्वरसम्बन्धी धारणाएँ वस्तुत: उसकी अपनी विकोसोन्मुख चेतना का ही इतिहास हैं।

अव्यक्त और अदृश्य की ओर मनुष्य की यात्रा सदैव व्यक्त और दृश्य से ही प्रारम्भ होती है। दृश्य हमेशा ही अदृश्य की ओर संकेत करता है, दर्शन की भाषा में कहें तो जो कुछ सापेक्ष और ससीम है, वह अपने आधार के रूप में स्वत: ही किसी निरपेक्ष और असीम के प्रति इंगित करता है, क्योंकि निरपेक्ष के बिना सापेक्ष की स्थिति सम्भव नहीं है। इस सृष्टि के मंच पर जब भी मनुष्य का पदार्पण हुआ होगा, उसका प्रथम परिचय व्यक्त जगत या दूसरे शब्दों में प्रकृति के परिवेश से ही हुआ होगा। प्रकृति के कार्यों ने उसके मन में अपार कौतूहल की सृष्टि की होगी, एक नियमित क्रम से उदित और अस्त होने वाला सूर्य, आकाश में चमकते तारे, प्रकाश और अन्धकार से भरे दिन-रात, बदलती हुई ऋतुएँ, वर्षाकाल में आकाश में तैरते बादल और चमकती-कड़कती बिजलियों ने मनुष्य के मन में बहुत सारे प्रश्न उठाये होंगे –'यह सब ऐसा क्यों है, कब से है, किसने यह सब बनाया है और क्यों बनाया है? वह कौन है जिसमें इतनी शक्ति है और क्या इससे हमारा भी कोई सम्बन्ध है या हो सकता है?' ऐसे अनेक भोले-भाले प्रश्नों और अज्ञान के कुहासे में भटकती छोटी-छोटी जिज्ञासाओं से ही अव्यक्त या अदृश्य की खोज प्रारम्भ हुई होगी। यही कारण है कि विश्व की सभी संस्कृतियों में किसी अतीन्द्रिय सत्ता की धारणा अनिवार्य रूप से प्रकृति से सम्बद्ध रही है।

यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि मनुष्य के लिए अदृश्य को दृश्य से बिल्कुल ही काटकर देखना प्राय: असम्भव ही है और यह भी कि मनुष्य की अवधारणाएँ और कल्पनाएँ उसके अपने मनोभौतिक व्यक्तित्व की समझ और सीमाओं से प्रभावित होती हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि यदि किसी मछली से पूछा जाय कि ईश्वर कैसा है, तो वह उसका वर्णन एक 'महामत्स्य' के रूप में ही कर पायेगी। इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि आदिम युग से आज तक मानव ने सृष्टि को बनाने वाली या नियंत्रित करने वाली सत्ता या 'ईश्वर' की कल्पना सदैव एक चेतन

तत्त्व के रूप में ही की है, क्योंकि वह स्वयं चेतन है और स्वाभाविक रूप से अनजाने ही विचार और क्रिया का सम्बन्ध चेतना से जोड़ता है। यह चेतन सत्ता उसकी ही भाँति प्रसन्न होती है, रुष्ट होती है और क्रुद्ध होने पर दण्ड भी देती है।

संस्कृत भाषा का यह 'देव' या 'देवता' शब्द भी विचारणीय है। संस्कृत भाषा की यह एक बड़ी विशेषता है कि उसके शब्द सूचित होनेवाले अर्थ का सम्पूर्ण बिम्ब या चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। देव या देवता 'दिव् द्योतने' धातु से बनता है, जिसका अर्थ भासित होना, प्रकाशित होना और क्रीड़ा करना या खेलना है। देव शब्द घञ् प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है, जो कर्ता का अर्थ देता है। इसका अर्थ है जो चमकता है, स्वयं प्रकाशित होता है, स्वचेतन है। प्रकाश होने पर ही वस्तुओं का रूप दिखलायी देता है, अत: प्रकाश का लाक्षणिक अर्थ है ज्ञान या बोध। 'देवता' शब्द इसी धातु से बना स्त्रीलिंग शब्द है जिसमें हम नाना रूप धारण करने वाली 'प्रकृति-नटी' का काव्यात्मक बिम्ब देख सकते हैं। इस प्रकार देव या देवता शब्द का अर्थ हुआ, वह चेतन शक्ति जो स्वयं-प्रकाशित है, प्रभामयी है। दृश्य जगत में घटने वाली चित्र-विचित्र घटनाएँ मानो इन देव-शक्तियों की क्रीड़ाएँ हैं। मनुष्य का मन देश-काल की भिन्नता होने पर भी एक जैसा ही होता है। उसकी मूलभूत वृत्तियाँ भी एक जैसी होती हैं और परिस्थिति-विशेष के प्रति उसकी प्रतिक्रिया भी अधिकांशत: समान होती है; इसलिए चाहे भारतीय देवशास्त्र हो, चाहे पश्चिमी देवशास्त्र, दोनों में ही प्रकृति के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित देवताओं की अवधारणा प्राप्त होती है, कालान्तर में जिनका समायोजन एक सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ दिव्य चेतना में हो गया।

इस प्रस्तावना के पश्चात् भारतीय चिन्तन की देवविषयक या ईश्वरसम्बन्धी दृष्टि पर विचार करना उचित होगा। 'ईश्वर' शब्द अपने आप में परमात्मा के सगुण रूप का वाचक है, किन्तु व्यवहार में यह परमसत्ता के अर्थ में सबसे अधिक प्रचलित शब्द है और उसके सभी पक्षों या रूपों का प्रतिनिधित्व करता है। इस आलेख में भी 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग इसी सामान्य अर्थ में किया गया है। भारतीय चिन्तन में ईश्वर की प्रारम्भिक अवधारणा किस प्रकार की रही होगी, कहना कठिन है, क्योंकि हमारे पास जो तथ्य हैं, वे हमें ऋग्वेद से प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद विश्व-साहित्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है, किन्तु इसमें हमें विभिन्न देवताओं का जो स्वरूप वर्णित मिलता है, उसे कदापि प्रारम्भिक या स्थूल नहीं कहा जा सकता। ऋषियों के द्वारा सुन्दर छन्दों में विभिन्न देवताओं की जो स्तुतियाँ की गयी हैं, उनमें उन देवताओं के व्यक्तित्व की बड़ी आकर्षक और सुस्पष्ट रूपरेखा मिलती है। उनका वेश, उनके आभूषण और अस्त्र-शस्त्र, उनका स्वभाव, उनके कार्य और अधिकार क्षेत्र सहज काव्यात्मक सौन्दर्य के साथ उपमा और रूपक जैसे अलंकारों द्वारा चित्रित हैं। इस प्रकार के वर्णन निश्चितरूप से ईश्वरविषयक चिन्तन की पहले से चली आती परम्परा की पुष्टि करते हैं। क्योंकि ये देवरूपक इतने परिष्कृत हैं कि इन्हें भारतीय चिन्तन का प्रथम प्रयास नहीं माना जा सकता। ऋग्वेद में वर्णित ये सभी देवता प्रकृति के विविध रूपों में व्यक्त होने वाली विश्व-चेतना की सौम्य और घोर अभिव्यक्तियों को रूपायित करते हैं।

वैदिक देवता संख्या में अनेक हैं और इनका वर्गीकरण न केवल अत्यन्त रोचक है, अपितु ऋग्वेद के उद्‌गाताओं की परिपक्व बुद्धि और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय भी देता है। इन देवताओं के तीन प्रकार या विभाग हैं –द्युस्थानीय या आकाशस्थानीय देवता, अन्तरिक्षस्थानीय देवता और पृथिवी या पृथिवीस्थानीय देवता। इनसे तात्पर्य है – क्रमश: पृथिवी के वायुमण्डल से ऊपर आकाश में सक्रिय शक्तियाँ, अन्तरिक्ष या पृथ्वी के वायुमण्डल में सक्रिय शक्तियाँ और पृथिवी पर सक्रिय शक्तियाँ।

द्युस्थानीय देवता यों तो अनेक हैं, किन्तु तीन का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है, विष्णु, वरुण और सूर्य। इनमें से विष्णु सर्वव्यापक तत्त्व या प्रकाश के देवता हैं; प्रकाश का सांकेतिक अर्थ है ज्ञान। इस विशेषता के कारण कालान्तर में विष्णु अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होते गये। विष्णु शब्द का अर्थ ही है 'व्यापनशील'। वरुण मूलत: विश्व की नैतिक व्यवस्था के अधिकारी देवता हैं, जो मनुष्य के शुभाशुभ कर्मों पर निरन्तर दृष्टि रखते हैं, अनैतिक आचरण करने पर ये मनुष्य को दण्डित करते हैं। इनके अपलक नेत्र सदैव मनुष्य के आचरण का निरीक्षण करते रहते हैं। इस प्रकार 'ऋत्' या कर्मानुकूल परिणामों की व्यवस्था इनके अधीन है। सूर्य स्पष्टत: पृथिवी के प्राणाधार हैं, अर्थात् उसे जीवन देने वाले प्रकाश और ऊष्मा के देवता हैं। इनके बिना पृथिवी पर जीवन ही सम्भव नहीं है। वैदिक साहित्य में सूर्य के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। वैदिक काल से चली

आती सूर्य की महिमा सनातन धर्म में आज भी सुरक्षित है; धार्मिक आचार-व्यवस्था में वे प्रथम अर्घ्य के अधिकारी हैं। गायत्री-उपासना सूर्य की जीवनदायिका शक्ति की ही उपासना है। इस तरह अत्यन्त प्राचीन काल में ही ऋषियों अर्थात् चिन्तकों ने मनुष्य के भौतिक और नैतिक जीवन के धारक तत्त्वों का महत्त्व जान लिया था।

अन्तरिक्षस्थानीय देवताओं में इन्द्र, मरुद्गण, पर्जन्य और रुद्र प्रमुख हैं। इनका सम्बन्ध पृथिवी को उर्वर बनाने वाली और उसे शस्य-सम्पन्न से समृद्ध करने वाली शक्तियों से है। इन्द्र व्यवधानों और अवरोधों को दूर कर पृथिवी पर वर्षा कराने वाले देवता हैं। मरुद्गण वायु-तत्त्व के ही विभिन्न रूप हैं, जो पर्जन्य अर्थात् बादलों को यथासमय अनुकूल दिशा में प्रेरित कर वर्षा कराते हैं, जिससे अन्न उत्पन्न होता है। आकाशीय विद्युत् को धारण करने वाले रुद्र झंझावात या प्रभञ्जन के देवता हैं, जो प्रकृति की घोर शक्ति का प्रतीक होते हुए भी अन्तत: पृथिवी को उर्वर बना जाते हैं। रुद्र को मरुतों का पिता भी कहा गया है; दोनों का ही सम्बन्ध वर्षा और आकाशीय विद्युत् से है। इनके अतिरिक्त वायुदेव भी हैं, जो मनुष्य के श्वास-प्रश्वास का आधार हैं और पंच-प्राणरूप होकर उसकी सभी शारीरिक क्रियाओं का कारण हैं।

पार्थिव देवताओं का स्वरूप देखकर तो वैदिक मनीषा की सराहना करने को जी करता है। प्रकृति के उस प्रत्येक तत्त्व को, जो मनुष्य को लाभान्वित करता है, या उसका उपकारी है, देवत्व से विभूषित किया गया है। पार्थिव देवता हैं – पृथिवी, सोम, अग्नि, नदी और बृहस्पति। इनका महत्त्व तो स्वत: स्पष्ट है। पृथिवी अर्थात् वह धरती जो हमारे सभी अत्याचारों, अनाचारों से निरपेक्ष हमें शरण दिये हुए है; इस विशाल ब्रह्माण्ड के नीरव अन्धकारमय एकान्त में मनुष्य के हर्ष-हास और रोदन-प्रलाप का एकमात्र आश्रय है। कम-से-कम अभी तक तो है ही। अग्नि और नदी हमारे जीवन का आधार हैं। यह अग्नितत्त्व ही अपने विभिन्न रूपों में हमारे जीवन को धारण किये हुए है। मनुष्य के भौतिक जीवन में घटी सभी क्रान्तियों का श्रेय अग्नि के आविष्कार को ही है। ऋग्वेद का प्रथम मंत्र 'अग्निमीडे पुरोहितम्' – अग्नि देवता को ही समर्पित है। नदी वह जल-शक्ति है, जो हमारे प्राणों को सींचती है और जिसके बिना हमारा जीवन असम्भव है। जीवन की तो उत्पत्ति ही जल से है। सोम आरोग्य और दीर्घ जीवन देने वाला वनस्पति और ओषधितत्त्व है। ये सभी देवता हमारे दैहिक जीवन के पोषक हैं। हमारे बुद्धितत्त्व का नियन्ता देवता बृहस्पति है। यह 'गुरुरूप' है और विवेक और विचारसामर्थ्य को देने वाला है।

वैदिक काल की यह विशाल देवसृष्टि और उसके अभिनन्दन में रचा गया सूक्त-साहित्य प्रकृति की शक्तियों से अभिभूत और चमत्कृत किसी बालक की मुग्ध प्रशंसा मात्र नहीं है; वह तात्त्विक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से सम्पन्न ऋषियों का उन सभी तत्त्वों के प्रति आभारप्रदर्शन है, जो मानव-जीवन को धारण करते हैं। ऋषियों ने ईश्वर मानकर उनमें पूज्यभाव रखा है। यह अन्धविश्वास या रूढ़ि नहीं है, देखा जाय तो यह बड़ी ही व्यावहारिक सोच है, जिसका आज अभाव हो चला है और मानव सभ्यता उस प्रकृति को ही नष्ट कर रही है, जिसके आधार पर वह जीवित है। यदि आज हमारा भी प्रकृति में वह 'पूज्यभाव' होता, तो पर्यावरण-संरक्षण के लिए किसी आन्दोलन की आवश्यकता न होती।

वैज्ञानिकों ने तो बहुत बाद में यह निष्कर्ष निकाला कि जिन्हें हम जड़ या अचेतन समझते हैं, वे भी जीवित हैं और उनमें भी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ होती हैं, किन्तु भारतीय मनीषा तो बहुत पहले से ही यह स्वीकार करती रही है कि व्यक्त और अव्यक्त, जड़ और चेतन, लौकिक और अलौकिक परस्पर भिन्न प्रतीत होते हुए भी परस्पर असम्पृक्त या असम्बद्ध नहीं हैं, वे एक ही चेतना की दो दशाएँ, दो स्थितियाँ हैं; इसीलिए तो व्यक्त अव्यक्त के ग्रहण में सहायक हो पाता है और अचेतन में चैतन्य की दिव्यता का साक्षात्कार सम्भव है।

परवर्तीकाल में भारतीय चिन्तकों ने जिस सर्वव्यापक चेतना का अपने से अभिन्न रूप में साक्षात्कार किया, उसकी यह पूर्वपीठिका थी। मन्त्रकाल में व्यष्टि-चेतना और समष्टि-चेतना के बीच हार्दिक आत्मीयता भले ही विकसित न हुई हो किन्तु परस्पर 'उपकार्योपकारक भाव' तो था ही; एक सम्बन्ध तो बन ही चुका था। **(क्रमशः)**

कर्म को भगवत्समर्पण करने से मुक्ति-प्राप्ति

स्वामी सत्यरूपानन्द

गीता में लिखा है मनुष्य कर्म के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। इसलिये यदि हमें कर्म करना ही है, तो कर्तव्य कर्म करना चाहिये। हम अपनी इच्छा से जो काम करते हैं वह कर्म है। कर्म करते समय कर्तापन का भाव आना कि मैं कर्म कर रहा हूँ, यह कर्म-बंधन है। कर्मफल की आशा या आकांक्षा का होना कर्म बंधन का कारण है। कर्म में आसक्ति बंधन का कारण होती है। फल की आशा रखकर कर्म करने से बंधन में फँसकर पुन: शरीर धारण करना पड़ेगा। अगले जन्म के कर्मफल के सुख-दुखों को भोगना पड़ता है। हमको जो दुख मिल रहा है, ये अपने ही कर्मों के फल हैं। कर्म का बंधन मन से होता है। मन जिसमें चिपकता है, आसक्त होता है, उससे बंधन होता है। जो अपने कर्मों को भगवान को समर्पित करता है, उसका कर्मबन्धन नहीं होता है। अत: हमलोगों को सदा यह भाव रखना चाहिए कि हम भगवान के लिये कर्म कर रहे हैं और भगवान ही हमसे करा रहे हैं।

जो कर्म हमें प्रारब्ध से मिला है, उसे कर्तव्यभाव से आनन्दपूर्वक करना चाहिये। कभी भी अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। किसी से भी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये और किसी से भी बदले की भावना नहीं रखनी चाहिये। कर्तापन का भाव और मन की इच्छा दोनों को छोड़ना पड़ेगा। गृहस्थ जीवन में भी ऐसा ही भाव रखने का प्रयत्न करें – भगवान ने ही हमें ऐसा सुन्दर पवित्र वातावरण दिया है। अत: हम जो भी कर्म करेंगे, वह आनन्द से प्रभु प्रीत्यर्थ ही करेंगे। इससे कर्म का बन्धन नहीं होगा और निश्चित ही मुक्ति मिलती है। कर्म के दुष्परिणाम को देखने से हम बुरे कर्म करने से बच जाते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि से कष्ट पाता है। दूसरा कोई उसे कष्ट नहीं देता। इन सब बातों को स्वीकार करना चाहिए और दूसरो को दोष नहीं देना चाहिए। हमें जीवन में समता का भाव रखना चाहिए। यदि अपना-पराया का भाव हम अपने मन से नहीं छोड़ सकते, तो उसके लिये भगवान से शरणागत होकर सरल हृदय से प्रार्थना करनी होगी – ''हे प्रभु ! हमारे मन के सभी दोषों को दूर कर दीजिये। मैं किसी का भी दोष न देखूँ और जिस रास्ते से जाने से मेरा मंगल होगा, वैसा ही मेरा मार्गदर्शन कीजिये। मुझे उसी रास्ते से ले चलिये। मुझे सहनशक्ति दीजिये। मैं सदा आपका स्मरण-मनन कर सकूँ, ऐसी कृपा कीजिये।''

जितना हमारे हाथ में है, हम उसे करें, हम उतनी सावधानी बरतें। शेष भगवान पर छोड़ दें। भगवान तो अन्तर्यामी हैं, वे सरल हृदय देखकर तुरंत कृपा करते हैं। लेकिन हमें इस बात को हमेशा याद रखना चाहिए कि हम उन्हें सरल हृदय से पुकारें। हमें कपट नहीं करना चाहिए। उनके राज्य में अन्याय नहीं है। यदि अपने लाभ के लिये कपट करते हैं, तो यह पाप है। कपट करने से संसार में बहुत भुगतना पड़ता है। इसलिये सब समय खाते, पीते, सोते, सभी अनुकूल-प्रतिकूल स्थिति में भी प्रभु से प्रार्थना करते रहना चाहिये। भगवान की कृपा अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों में रहती है। लोग नाम-यश के लिये बड़े-बड़े कर्म करते हैं। छोटे-छोटे कर्म भी भगवद्भाव से, भगवत्समर्पण से करने से कर्म-बंधन में नहीं अटकना पड़ता। भव-बन्धन नहीं होता है । अपने मन को संतुलित रखने का प्रयत्न करना। भोगी लोगों से घनिष्ठता नहीं रखनी चाहिए। सांसारिक वस्तुओं की अधिक भोग-वासना नहीं रखनी चाहिये। कर्म ईमानदारी से करें। कामचोरी न करें। कर्म दबाव में, खिन्न मन से न करें। उसे आनन्द से करें। हमें रुपये-पैसे से अधिक समय को महत्व देना चाहिए। खाली समय ५ मिनट भी क्यो न हो, उतने में जप करना चाहिए। उसे व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। अकेले रहने और मौन रहने की आदत डालनी चाहिए। अपने मन को पहचानना अधिक आवश्यक है। सुखी जीवन और कर्मबन्धन से मुक्ति हेतु हम कर्म के इस रहस्य का पालन करें और सदा के लिये मुक्त हो जाएँ। ○○○

हमारे धार्मिक अनुष्ठान

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

जो धर्म जीवन्त है, उसे स्थिर न होकर सदैव विकास की दिशा में अग्रसर होना चाहिए। केवल निर्जीव ही अपने कठोर स्वरूप को न छोड़कर पाषाणमय हो जाता है। जीवन्त तो सदैव नवीन सम्भावनाओं, नवीन तथ्यों को आत्मसात् करता है, अभूतपूर्व घटनाओं को स्वस्थ दृष्टि से देखता है और परिवर्तनशील परिवेश को कुछ नए सिरे से गढ़ने के लिए तत्पर रहता है।

सनातन धर्म के बारे में भी यह सत्य है। यदि हिन्दू धर्म विकास और प्रचार की दृष्टि से अग्रसर न होता और अनुभवों की नवीन सम्भावनाओं को ग्रहण नहीं करता, तो वह सनातन नहीं हो पाता। विश्व के अन्य किसी धर्म की तुलना में हिन्दू धर्म में इस आत्म-समावेश और पुनर्योजना की शक्ति श्रेष्ठतर है। इसलिए हिन्दू धर्म को एक अविनाशी धर्म के रूप में माना जाता है। विश्व के धर्मरूपी वृक्ष का हिन्दू धर्म वह बहुत बड़ा तना है, जो विश्व के अन्य अल्पजीवी धर्ममतों को अपनी शाखाओं के रूप में वहन करता है।

यदि हम नवागत सम्भावनाओं के स्वरूप के विषय में सावधान हैं, तो यह जानना आवश्यक है कि हम इन नवीन सम्भावनाओं को कैसे ग्रहण करें। रोमन कैथलिक सम्प्रदाय की तरह हिन्दू धर्म भी पिछले बारह सौ वर्ष तक एक पृथक धर्म के रूप में आत्मोन्नति, पादरी और पूजक अथवा आत्मा और परमात्मा के बीच रहस्य के विषयों में विकसित होता रहा। निस्सन्देह सभी धर्मों के चरम सन्देश की दृष्टि से यह ठीक है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार आत्मा की मुक्ति – आध्यात्मिक व्यक्तित्व ही संगठित सम्प्रदायों का मूल कार्य है। सामाजिक कल्याण की कुछ बातें तो गौण हैं।

किन्तु धर्म का एक सामुदायिक पक्ष भी होता है। यह आत्मा को ईश्वर तक तो उन्नत करता है, साथ ही मनुष्य को एक-दूसरे से जोड़ता भी है। यदि हम सचमुच जगन्माता की सन्तान हैं, तो इस सम्बन्ध से हम एक-दूसरे के भाई हैं। किसी एक दिशा में अर्जित की गई विशेषज्ञता को अन्य क्षेत्र में किए जाने वाले विकास से सन्तुलित करना होगा। पूजा-अर्चना के सामाजिक अथवा सार्व-लौकिक पक्ष पर यदि ध्यान दिया जाए, तो अनेक व्यक्तियों का उद्धार होगा।

इसके लिए एक सार्वजनिक प्रार्थना होनी चाहिए और वह प्रार्थना संगठित होनी चाहिए। अर्थात् इस प्रकार की प्रार्थना-सभाएँ होनी चाहिए, जिसमें प्रार्थना करने वाले एकस्वर में अपनी भाषा में प्रार्थना कर सकें। सामूहिक श्लोक-गान करने वालों को दो भागों में बाँटा जा सकता है, और वे उन श्लोकों का प्रतिगान अपनी भाषा में कर सकते हैं।

शोभायात्रा की धार्मिक प्रासंगिकता का पुन: प्रचलन करना चाहिए। बौद्ध धर्म, जो पूर्वतर हिन्दू धर्म का ही एक रूप है, उसका अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि ध्वज-पताका, झाँझ, ढोल-नगाड़े, धूप, पवित्र जल के साथ शोभायात्रा का अपना एक महान वैशिष्ट्य था। इनमें से कुछ सुन्दर बातें अभी भी विद्यमान हैं, जैसे कि विवाह के समय दूल्हे के सामने सात नारियाँ आरती उतारती हैं तथा पिता के अन्तिम संस्कार के समय पुत्र उनकी प्रदक्षिणा करते हैं।

हमारे प्राचीन धार्मिक संस्कारों का, अनुष्ठानों का अच्छी तरह से अनुसंधान करना चाहिए। हमारे कई अनुष्ठानों का यूरोप में प्रचलन है, किन्तु हम उन्हें भूल गए हैं। हमें हिन्दू धर्माचारों का पुन: प्रचलन करना होगा। भविष्य में ऐसी उपासना हो, जिसमें सामान्य जन और पादरी दोनों का स्थान हो। भगवान की पूजा में भी सहयोग और आत्म-संगठन होना चाहिए। ○○○

एकाग्रता और सत्य-पालन

प्रत्येक वर्ष १२ जनवरी, स्वामी विवेकानन्द के जन्म दिवस को हम राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाते हैं। हमारे देश की केन्द्र सरकार ने यह दिन राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में घोषित किया और १९८५ से हम प्रति वर्ष इसे मना रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द युवाशक्ति के पुंजीभूत रूप थे। उनके अन्दर अनन्त शक्ति, अनन्त साहस, पवित्रता, आत्मविश्वास, देशप्रेम और सेवा की भावना कूट-कूट कर भरी थी। उनमें बचपन से ही इन गुणों का प्रकाश देखने को मिलता है।

स्वामी विवेकानन्द के बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनकी माता भुवनेश्वरी देवी ने उनको एक शिक्षा दी थी, 'आजीवन पवित्र रहना, अपने सम्मान की रक्षा करना और कभी दूसरों के सम्मान को ठेस मत पहुँचाना। खूब शान्त रहना, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर स्वयं को दृढ़ कर लेना।' नरेन्द्र का मन बहुत एकाग्र था। कोई भी कार्य वह पूरे मन लगाकर करता था। केवल पढ़ाई ही नहीं, खेल-कूद, हँसी-ठठ्ठा सब बातों में वह सिरमौर था। अपने सहपाठियों को वह बहुत अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाता था।

एकदिन स्कूल में नरेन्द्र अपने मित्रों को कहानी सुना रहा था। उसी समय शिक्षक कक्षा में आए और पढ़ाना शुरू किया। किन्तु बच्चे तो नरेन्द्र की कहानी सुनने में ही मग्न थे। उनकी फुसफुसाहट से शिक्षक चिढ़ गए। सबका मन पढ़ाई में था कि नहीं, यह जाँचने के लिए वे एक-एक को पूछने लगे। कोई भी उत्तर नहीं दे पा रहा था। किन्तु नरेन्द्र का मन तो दोनों तरफ था। मित्रों को कहानी सुनाते समय भी वह शिक्षक के पाठ पर ध्यान दे रहा था। शिक्षक ने जब नरेन्द्र से पूछा, तो उसने बिना किसी हिचक के सब उत्तर दे दिए। शिक्षक ने जब बच्चों से पूछा कि पढ़ाने के समय कौन कहानी कह रहा था, तो सबने नरेन्द्र की ओर इशारा किया। शिक्षक को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने नरेन्द्र को छोड़कर बाकी सबको खड़ा रहने के लिए कहा। सभी के साथ नरेन्द्र भी खड़ा हुआ। शिक्षक ने कहा, 'तुम्हें खड़े रहने की आवश्यकता नहीं है।' किन्तु नरेन्द्र ने कहा, 'नहीं मैं ही तो बातें कर रहा था, मैं भी खड़ा रहूँगा।' और वह खड़ा ही रहा।

अपने सम्मान की रक्षा करना

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी के जीवन की एक मजेदार घटना है। तब हमारा देश स्वतन्त्र नहीं हुआ था। किन्तु देशवासियों में आत्म-सम्मान की भावना का विकास हो रहा था। विद्यासागरजी उस समय हिन्दू कॉलेज के अध्यापक थे। उनके प्रिंसिपल एक अंग्रेज थे। उनका नाम 'कार' था। वे बड़े अभिमानी पुरुष थे। अपने कमरे में वे एक ही कुर्सी रखते थे – स्वयं बैठने के लिए। जब कोई अन्य अध्यापक उनसे मिलने आते, तो वे स्वयं कुर्सी पर बैठे-बैठे उनसे बात करते, जबकि अध्यापक को खड़ा रहना पड़ता था।

एकबार किसी आवश्यक कार्य से उन्होंने विद्यासागर जी को बुलाया। उनके वहाँ पहुँचने पर कार साहब ने कुर्सी पर लेटे-लेटे उनसे बात की। विद्यासागर जी को यह बात बुरी लगी। उन्होंने सोच लिया कि वे एक दिन कार साहब को इसका सबक सिखाएँगे।

कुछ दिनों बाद कार साहब ने पुन: विद्यासागर जी को बुलाया। किन्तु वे गए नहीं। अन्तत: कार साहब स्वयं इनके घर आ गए। जब उन्होंने देखा कि कार साहब आ रहे हैं, तब वे तुरन्त पलंग पर लेट गए और उन्होंने लेटे-लेटे ही कार साहब से बातें की। कार साहब को यह बहुत अपमानजनक लगा और उन्होंने विद्यासागर जी से कहा, 'तुम्हें थोड़ा भी शिष्टाचार नहीं आता। मुझे खड़ा करवाकर तुम लेटे-लेटे बात कर रहे हो? बैठने के लिए भी नहीं कहा।'

विद्यासागर जी ने तुरन्त उत्तर दिया, 'महाशय, यह सब तो मैंने आपके यहाँ से ही सीखा है। मैंने सोचा कि शायद आपके यहाँ ऐसी ही प्रथा होगी।' यह सुनकर कार साहब बहुत लज्जित हुए। उन्होंने फिर कभी वैसा अभद्र व्यवहार नहीं किया। एकबार विद्यासागर जी ने कार साहब से कहा था, 'यदि सब्जी बेचनी पड़े, मोची की दुकान पर काम करना पड़े, भूखों भी मरना पड़े – तो भी ठीक है, पर असम्मान वाली नौकरी कभी नहीं करूँगा।' ○○○

युवा जिज्ञासा

प्रश्न – यदि हमारे द्वारा कोई ऐसा कार्य हो जाये, जिससे मन में ग्लानि का भाव उत्पन्न हो, तब हमें क्या करना चाहिए? – ललित पैकरा और राजकुमार, बिलासपुर

उत्तर – मानव जीवन में त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। लेकिन बुद्धिमान वह है, जो उन त्रुटियों से शिक्षा लेकर पुन: गलती नहीं करता और अपनी ऊर्जा, शक्ति को ग्लानि और पश्चात्ताप में न लगाकर उसे अच्छे कार्यों और अच्छे बनने में लगाता है। बार-बार की गई गलतियों का चिन्तन न करें, बल्कि लोक-कल्याणकारी, चरित्र-निर्माणकारी क्रिया-कलापों में अपनी शक्ति को लगायें।

प्रश्न – आज युवावर्ग के भटकने का क्या कारण है? – रंजन कुमार सिंह, ए.वी. पब्लिक स्कूल, भटगांव

उत्तर – आज आधुनिक चकाचौंध, प्रेस, मीडिया, दूरदर्शन आदि के गलत विज्ञापनों, कुसंग, यथार्थ चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा के अभाव और यथोचित पथप्रदर्शन के अभाव में युवावर्ग भटक रहा है। आज नितान्त आवश्यकता है कि युवकों को स्वामी विवेकानन्द की नैतिक, आध्यात्मिक, मानव-निर्माणकारी शिक्षा, राष्ट्रपरक शिक्षा और सुसंस्कार देकर उन्हें सन्मार्ग पर लाया जाय और उनकी ऊर्जा को सृजनात्मक कार्यों में लगाकर उनके जीवन को सार्थक बनाया जाय। उनकी ऊर्जा-शक्ति को नकारात्मक और विनाशात्मक दिशा में व्यय न कर सकारात्मक कार्यों और समाज सेवा में सदुपयोग किया जाय।

प्रश्न – स्वामीजी ! क्या युवा-शिविर में जाने से सबको कुछ-न-कुछ लाभ होता है? – मनीष साहू

उत्तर – हाँ, युवा-शिविर में जाने से सबको कुछ-न-कुछ अवश्य लाभ होता है। न चाहते हुये भी केवल यहाँ बैठने से भी लाभ होगा। उसमें सत्संस्कार का बीजारोपण होगा। लेकिन एक और अन्तर होगा। जो जितना अधिक सावधान और गुणग्राही होगा, वह उतना अधिक यहाँ की चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा को प्राप्त कर अपनी आत्मशक्ति को जाग्रत कर सकेगा और अपने सच्चरित्र का निर्माण कर सकेगा। अन्य लोगों में कालान्तर में यह संस्कार अनुकूल परिवेश पाकर जाग्रत होगा और उसके जीवन-निर्माण में सहायक होगा। संस्कार कभी नष्ट नहीं होता। यह सत्संस्कार भी एक दिन उभर कर सही दिशा में लगा देगा और महानतम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होगा।

प्रश्न – मनुष्य नशा का सेवन क्यों करता है? विवेकानन्दजी ने इनके बारे में क्या उपाय बताया?– कृष्णा राय

उत्तर – मनुष्य नशा का सेवन अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण करता है। उपनिषद कहती है कि दुर्बलचित्त व्यक्ति आत्मज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता – **न अयं आत्मा बलहीनेन लभ्यः**। इसीलिये स्वामी विवेकानन्द ने कहा है – ''बच्चो, याद रखना कि कायर तथा दुर्बल व्यक्ति ही पापाचरण और झूठ बोलते हैं। साहसी तथा शक्तिशाली व्यक्ति सदा ही नीतिपरायण होते हैं। नैतिक, साहसी तथा सहानुभूतिसम्पन्न बनने का प्रयास करो।'' स्वामीजी ने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सब प्रकार से शक्तिशाली होने को कहा है। अत: हमें दृढ़ इच्छाशक्ति से कुव्यसनों का त्यागकर अपने में अन्तर्निहित समस्त सद्‌गुणों को जाग्रत करना चाहिये और अपनी सारी ऊर्जा-शक्ति को अपने लक्ष्य में लगाना चाहिये। ❍

क्रान्ति है पुकारती

रामगोपाल दीक्षित

क्रान्ति है पुकारती, तू सो रहा जवान है ।
क्रान्ति की तू आन और क्रान्ति की तू शान है
क्रान्ति के सपूत जाग हो गया बिहान है ।।
देश में है त्राहि त्राहि, सुन रहा है तू पड़ा,
दीन की कराह आह, सुन रहा है तू पड़ा,
गाँव-गाँव भय, अशान्ति उठ रहा तूफान है ।।
कौन है जो दौड़-दौड़ गाँव-गाँव जायेगा,
रक्त क्रान्ति के जहर से देश को बचायेगा,
तेरे बल पर अब भी देख, देश को गुमान है ।।
करवटें बदल नहीं, तू अब तो आँखें खोल दे,
तू निकल और एक बार इन्कलाब बोल दे,
तेरे दम से यह जमीन और आसमान है ।।
छोड़ दे यह भेद-भाव तोड़ दे यह रूढ़ियाँ,
रूढ़ियों से बँध सकी है कब नवीन पीढ़ियाँ,
सब मनुज समान और सबका हक समान है ।।
तू बढ़ा है जब कभी, तो आँधियाँ लजा गईं,
क्रान्तियाँ कदम-कदम पे मंजिलें सजा गईं,
तेरे इक सही कदम पे, झुक गया जहान है ।।
मार्ग की मुसीबतों से कब रुकीं जवानियाँ,
युग चुनौतियों के डर से, कब झुकीं जवानियाँ,
उठ कदम बढ़ा के, तेरी साँस में तूफान है ।।

गीतातत्त्व चिन्तन (८/५)

(आठवाँ अध्याय)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१,२, अध्याय १ से ६वें अध्याय तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ अध्याय का 'विवेक ज्योति' के १९९१ के मार्च अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ८वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है)

तब तुलसीदासजी ने कहा कि सीढ़ी तो इसीलिए लगती है जिससे नीचे का आदमी ऊपर जाए। परन्तु उसी सीढ़ी के द्वारा ही ऊपर वाला व्यक्ति नीचे भी तो आ सकता है। हम इतने कोटि-कोटि लोग यहाँ नीचे हैं। आप अकेले ऊपर। तब आप ही क्यों नहीं सीढ़ी का सहारा लेकर नीचे आ जाते और हम लोग एक साथ आप से मिल भी पाएँगे। यह जो ईश्वर का नीचे अवतरण करना है, यह ईश्वर की तपस्या है। ईश्वर का तप है। उसका नीचे उतरना उसका तप है और हमारा ऊपर चढ़ना हमारा तप है। हम भी अपने स्वार्थ का त्याग करते हैं। क्यों? भगवान के पास जाने के लिए। तो वही कहा गया, जो विसर्ग है, वही त्याग है। यह त्याग ही कर्म है। यदि मनुष्य स्वार्थी हो जाए, लोभी हो जाए, अपने ही स्वार्थ साधन में मग्न रहे, तो संसार नष्ट हो जाएगा। आज की इस विषम परिस्थिति में भी त्याग का भाव कुछ लोगों में विद्यमान है, इसीलिए संसार चल रहा है। त्याग का मतलब है, यज्ञ, दान और तप। पूर्व काल में यज्ञ हुआ करते थे। हम आज समाज-कल्याण के क्षेत्र में जो विभिन्न चेष्टाएँ करते हैं, यह भी यज्ञ है। दान देते हैं, यह भी यज्ञ है और तप करते हैं, वह भी यज्ञ है। यज्ञ दो प्रकार के हैं (१) द्रव्य यज्ञ (२) ज्ञानयज्ञ। देवताओं के उद्देश्य से त्याग युक्त द्रव्यमय यज्ञ से प्राणियों का कल्याण होता है तथा कर्ता की चित्तशुद्धि होती है और परमात्मा में सर्वकर्मसमर्पण रूप, त्याग विशिष्ट ज्ञानयज्ञ से अपना कल्याण होता है, भगवत्प्राप्ति और परम शान्ति प्राप्त होती है।

अब चौथे श्लोक में अधिभूत, अधिदैव तथा अधियज्ञ किसे कहते हैं, श्रीभगवान इन तीनों का उत्तर देते हुए कहते हैं – **अधिभूतं क्षरो भावः** - क्षर अर्थात् क्षयशील, जो प्रतिक्षण परिणाम और नाश को प्राप्त होते हैं, भाव अर्थात् देहादि पदार्थ को अधिभूत कहा जाता है, स्थूल या सूक्ष्म देहादि पदार्थ भूतवर्ग (प्राणिसमूह) अधिकार करके ही उत्पन्न होते हैं तथा सतत परिवर्तनशील होकर नाश को प्राप्त होते हैं, इसलिए ये शरीरादि ही अधिभूत हैं। अधिदैव क्या है – **पुरुषश्चाधिदैवतम्** - पुरुष अर्थात् सूर्यमण्डल में रहनेवाला हिरण्यगर्भ अपने अंशरूप समस्त देवताओं का अधिपति है, इसलिए हिरण्यगर्भ को अधिदैवत अर्थात् समस्त देवताओं का अधिष्ठाता देवता कहा गया है। शंकराचार्य अपने भाष्य में कहते हैं - पुरुष अर्थात् जिससे सब जगत् परिपूर्ण है अथवा जो शरीररूपी पुर में रहनेवाला होने से पुरुष कहलाता है, वह सब प्राणियों के इन्द्रियादि कारणों का अनुग्राहक हिरण्यगर्भ अधिदैवत है। इस प्रकार इस समूचे विश्व में, इस विराट ब्रह्माण्ड में, हम दो बातें देखते हैं। एक विनाशात्मक, जिसका नाश हो रहा है। वह है अधिभूत। जिसका नाश नहीं होता, उसको कहा गया है, अधिदैवत। फिर अधियज्ञ के बारे में कहते हैं - **अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर** – हे देहधारियों में श्रेष्ठ, मैं ही इस शरीर में अन्तर्यामी रूप से स्थित हुआ अधियज्ञ हूँ - अर्थात् मैं ही यज्ञादि कर्मों का अधिष्ठाता देवता (यज्ञादि कर्मों का प्रवर्तक तथा उनका फलदाता) हूँ। यह यज्ञ क्या है? हमारे भीतर में जो यज्ञ की क्रिया चल रही है, वह विष्णु का रूप है। कहा गया – यज्ञो वै विष्णुः। विष्णुः अर्थात् जो तत्त्व हमारे भीतर व्यापक होकर समाया हुआ है। वही मानो यज्ञस्वरूप है। तुम्हारे इस शरीर के भीतर मैं ही अधियज्ञ के रूप में हूँ। इस प्रकार श्रीभगवान का कथन है कि अधिभूत, अधियज्ञ और अधिदैव, इन तीनों के साथ तब तुम मुझे जान लोगे तो अन्तकाल में भी मेरा स्मरण तुम्हें बना रहेगा। अर्जुन ने जब इन तीनों के बारे में पूछा था, तो भगवान ने कहा कि देखो – एक तो क्षर भाव, जिसका नाश होता है, उसे भी समझना कि वह भी मेरा ही रूप है। यह भी मेरी प्रकृति है, मुझसे भिन्न

नहीं है। जैसे हम देखते हैं सागर को। सागर के कितने रूप होते हैं। शान्त सागर की कल्पना कीजिए। नजदीक से तो सागर शान्त दिखाई नहीं देता। दूर जाकर ही शान्त प्रशान्त सागर रहता है। परन्तु इसी शान्त सागर के कितने रूप ! बहुत बड़ी-बड़ी तरंगें भी उठ रही हैं और फिर वहाँ पर फेन भी जमा है, बुलबुले भी जमा हैं। यह सब सागर की ही समष्टि है। सागर की ही तरंगें हैं, सागर के ही बुलबुले हैं, सागर का ही फेन है। ये भिन्न-भिन्न दिखाई देनेवाली वस्तुएँ वस्तुत: सागर से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि सब मिलकर सागर ही हैं। ठीक इसी प्रकार ईश्वर के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं। ईश्वर का नष्ट होनेवाला भाव ऐसा ही है, जैसे सागर का जो बुलबुला उठकर फूट जाता है, सागर की तरंग, जो नष्ट हो जाती है, शान्त हो जाती है। ईश्वर का क्षर भाव वह है, मानो सागर का दूसरा भाव जो शान्त बना हुआ है। उसको कहा गया अधिदैवत, जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। इस प्रकार उस परम पुरुष के दो रूप हो गये, एक नष्ट होनेवाला भाव है, जिसको अपरा प्रकृति के नाम से जाना जाता है। दूसरा अविनाशी, जिसको अक्षर कहा गया एवं परा प्रकृति भी कहा गया। ये दो तो हैं ही। फिर तीसरा कौन-सा है? वह जो भीतर में बैठकर इन दोनों को संयमित कर रहा है। वह अधियज्ञ है, जो दोनों को चलाता है। लगता है कितना अद्भुत वह सारा-का-सारा खेल चल रहा है। आइन्स्टीन से एक बार किसी ने पूछा, क्या आप ईश्वर पर विश्वास करते हैं। आइन्स्टीन ने कहा, 'हाँ,।' फिर पूछा कि आपकी ईश्वर विषयक धारणा क्या है? वे ईश्वर सम्बन्धित धारणा को प्रकट करते हुए कहते हैं – supreme intellgent power अर्थात् परम बोधमय सत्ता। ऐसी कोई शक्ति है, उसी को मैं ईश्वर का नाम देता हूँ। वह शक्ति क्या करती है? वह शक्ति नक्षत्रों को, तारों को, जो अन्तरिक्ष में विद्यमान रहते हैं - को एक नियम के भीतर बाँध कर रखती है। उसी शक्ति को मैं परम बोधमय सत्ता कहता हूँ। तो प्रभु श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि अर्जुन इस देह में मैं अधियज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित हूँ। अर्थात् क्षर और अक्षर को मैं चलानेवाला हूँ। यदि तू मुझे अधिभूत के साथ, अधिदैव के साथ, अधियज्ञ के साथ जान लेगा, तो मृत्यु के समय भी मेरा स्मरण तुझे होता रहेगा। **(क्रमश:)**

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

३०२. एक चित्त बिना नहिं भगति दृढ़ाई

महाराष्ट्र के संत श्रीधर स्वामी के एक शिष्य दिनकर रामदासी ने जब सुना कि उनके गुरु सज्जनगढ़ में सात वर्ष का एकान्त वास करने के बाद पुन: सात वर्षों के लिए बरदपुर के समीपस्थ स्थल में एकान्तवास के लिए जा रहे हैं, तो उन्होंने गुरु से कहा, ''स्वामीजी, आपके निरन्तर एकान्त में रहने का प्रयोजन मेरी समझ में नहीं आया ।''

श्रीधर स्वामी ने कहा, ''नाम-जप, पूजा-अर्चना ये भक्ति के प्रथम सोपान हैं और तप अन्तिम सोपान । तप साधक का शुभ संकल्प होता है । जिस क्रिया से शरीर तपता है और मन कठोर हो जाता है, वह तप है । शारीरिक इन्द्रियाँ मन को भ्रमित करने का प्रयास करती रहती हैं । जब तक शरीर के साथ साधक का सम्बन्ध बना रहता है, तब तक वह मन पर नियंत्रण नहीं रख सकता । एकान्त के लिए निर्जन स्थान का होना जरूरी है, क्योंकि वह कोलाहल व अन्य व्यवधानों से रहित होता है। मानसिक विकारों से निर्लिप्त रहने के लिए एकान्त का होना बहुत जरूरी है। एकान्त में सांसारिक ममता जाती रहती है और इच्छाशक्ति अप्रतिहत होती रहती है ।

मन और शरीर ये साधना के बाधक तत्त्व हैं । एकान्त में मन उत्तरोत्तर स्थिर होता जाता है । अन्य विचारों में मन उलझता नहीं और तब साधक को ज्ञान व बोध होने लगता है । ○○○

आवश्यक सूचना

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष जनवरी, २०१७ में भी रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में 'विवेकानन्द जयन्ती' के उपलक्ष्य में २२-१-२०१७ से ३०-१-२०१७ तक विभिन्न प्रतियोगिताएँ होंगी। पं. रविशंकर विश्वविद्यालय में आश्रम और विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में १२ जनवरी को विभिन्न कॉलेजों के छात्र-छात्राओं द्वारा स्वामी विवेकानन्द जी को श्रद्धांजलि दी जायेगी। १९ जनवरी, २०१७ को आश्रम में श्रीरामकृष्ण मन्दिर में पूजा, होम और व्याख्यान होंगे। २ फरवरी, २०१७ को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा। ३ फरवरी, २०१७ ११ फरवरी, २०१७ तक आश्रम प्रांगण में स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'राजेश रामायणी' के रामचरित मानस पर संगीतमय प्रवचन होंगे।

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (१३)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

सन्तों के जीवन में मिथ्या अहंकार का अभाव

स्वामी वीरेश्वरानन्द

हमारे संघ के महान संन्यासियों के जीवन में मैंने एक विशेष गुण देखा था। वह गुण था उनमें मिथ्या अहंकार का अभाव। जब मैं ब्रह्मचारी था, तब स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने शिलाँग आश्रम से बेलूड़ मठ में मुख्य कार्यालय में कार्य करने के लिए मुझे बुलाया। तब महाराज महासचिव थे। मेरे आने पर महाराज ने मुझसे कहा, "मैंने सुना हैं कि तुम अपने पूर्वाश्रम में लेखा-कार्य (auditing accounts) करते थे। हमें ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता है, जो हमारे आश्रमों द्वारा प्रेषित लेखा-विवरणों (statemenets) का परीक्षण कर सके। तुम्हें वह कार्य करना होगा।"

मुझे कार्य करने के लिए एक टेबल-कुर्सी की आवश्यकता थी। पत्राचार कार्यालय में एक बड़ा टेबल था, जिसका उपयोग एक संन्यासी महाराज करते थे। स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने मुझसे कहा, "उस मेज पर तुम भी कार्य करना। तुम और वे संन्यासी उस मेज के आमने-सामने काम करना।" मुझे लेखा-विवरण को रखने के लिए कुछ दराज (drawers) चाहिए थे। मेज के दोनों ओर बहुत से दराज थे। लेकिन मेरी ओर के दराज बन्द थे, जिसके कारण मैं उसका उपयोग नहीं कर पा रहा था। जब मैंने इस ओर स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज का ध्यान आकर्षित किया, तो उन्होंने कहा, "इन दराजों का उपयोग स्वामी असीमानन्द जी महाराज करते थे। वे अभी हमारे वाराणसी अद्वैत आश्रम में अवकाश का जीवन बिता रहे हैं। उन्होंने ही इन्हें बन्द किया होगा।" इसके बाद स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने चाबी का एक गुच्छा ढूँढ़ा और उसमें से एक-एक चाबी से दराजों को खोलने का प्रयास करने लगे। बहुत प्रयास के बाद उनको सही चाबी मिली और दराजों को खोला गया।

दराजों में विभिन्न प्रकार के पत्र थे। उनमें से कुछ कार्यालयीय और कुछ स्वामी असीमानन्द जी के व्यक्तिगत पत्र थे। स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने मुझसे कहा, "तुम्हारे लिए इन दराजों को खाली करना होगा।" जब मैंने इन्हें खाली करना चाहा, तो उन्होंने कहा, "नहीं, तुम इन पत्रों को नहीं छाँट सकोगे। मुझे पता है कि इन पत्रों को छाँटकर कहाँ रखना है।" ऐसा कहकर वे नीचे फर्श पर बैठ गए और पत्रों को छाँटने लगे।

अपने से लगभग ४० वर्ष छोटे मुझ ब्रह्मचारी की सहायता करने के लिए वे खाली फर्श पर सहज भाव से लगभग एक घण्टे तक बैठे रहे। रामकृष्ण संघ के महासचिव होते हुये भी, वे अपने महान पद के अभिमान से ऊपर थे। उस दिन महाराज से मुझे विनम्रता की अद्‌भुत शिक्षा मिली। मैंने यह भी सीखा कि ईश्वर के प्रति सच्चे समर्पण एवं सेवा भावना के द्वारा कैसे स्वयं के झूठे अहंकार को मिटाया जा सकता है।

ज्ञातव्य हो कि कि स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज परवर्ती काल में रामकृष्ण संघ के १०वें संघाध्यक्ष हुए।

एक अन्य घटना। बेलूड़ मठ के प्रधान कार्यालय में सेवारत हम कनिष्ठ साधुवृन्द जिस भवन में रहते थे, उसी में सह-महासचिव स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज (१९१०-१९७५) भी रहते थे।

स्वामी चिदात्मानन्द

रविवार को हमारा कार्यालय बन्द रहता था। उस दिन हमलोग सुबह गमछा पहनकर कपड़ों की सफाई करते थे। एक रविवार, हमारे भवन में रहने वाले कनिष्ठतम साधु कपड़ों की सफाई कर रहे थे। वे बहुत दुबले-पतले थे। उनको चिढ़ाने के लिए मैंने कहा, "तुमको थोड़ा और मोटा होना चाहिए। तुम ठीक से भोजन किया करो।"

उन्होंने कहा, "भले ही मैं दुबला-पतला हूँ, लेकिन मैं बलवान हूँ और मैं मुक्केबाजी (boxing) भी जानता हूँ।"

मैंने कहा, "अच्छा? मुझे नहीं लगता कि मैं एक हाथ से भी तुमसे लड़ूँ, तो तुम अपना बचाव कर पाओगे।" उन्होंने मेरी चुनौती स्वीकार कर ली और अपने दोनों हाथों से मुझ पर प्रहार करने लगे, किन्तु वे सफल नहीं हुए। उन्होंने मुक्केबाजी में बहुत कम शिक्षा प्राप्त की थी।

स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज उस समय अपने कमरे में थे। वे हमारी बातें सुन रहे थे। उन्होंने बाहर आकर हमारी मित्रवत मुक्केबाजी को कुछ मिनट देखकर मुझसे कहा, "लगता है, तुम मुक्केबाजी जानते हो। मैं भी अपनी युवावस्था में

मुक्केबाजी करता था। आओ, मेरे साथ लड़ो ! लेकिन एक शर्त पर – तुम मुझपर हमला नहीं करोगे; केवल अपना बचाव करोगे।'' इस प्रकार मैंने स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज के साथ मुक्केबाजी की। किन्तु हमारी लड़ाई केवल दो-तीन मिनट तक चली। उस समय स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज की उम्र लगभग ६० वर्ष और मेरी ३० वर्ष की होगी।

स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज का उस दिन का व्यवहार आज भी मुझे अनिर्वचनीय आनन्द से भर देता है। यद्यपि वे हमारे संघ में उच्च पद पर थे और सबके सम्माननीय थे, तथापि कभी-कभी हमारे स्तर पर आ जाते थे, मानो वे हमारे समकक्ष हों। भारत में केवल पद के अनुसार ही नहीं, अपितु आयु में बड़े लोग भी सम्माननीय होते हैं। किन्तु महाराज का ऐसा स्नेहोचित व्यवहार शायद रामकृष्ण संघ के साधुओं के अतिरिक्त दुर्लभ है।

यदि स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज को अपने पद और आयु का अभिमान होता, तो वे हमारे साथ वैसा मित्रवत् व्यवहार कभी नहीं करते। उनमें मिथ्याभिमान का पूर्ण अभाव था।

संन्यासी सम्पूर्ण विश्व के होते हैं

रामकृष्ण संघ में ब्रह्मचारी बनने के थोड़े दिन बाद ही मैं संघ के वरिष्ठ संन्यासी स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज (१८८४-१९६७) का दर्शन करने गया। वे श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य थे। तब उनकी आयु लगभग सत्तर वर्ष की थी।

स्वामी प्रेमेशानन्द

मेरे प्रणाम करने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा, ''तुम्हारा जन्म-स्थान कहाँ है?''

मैंने उत्तर दिया, ''महाराज, मैं भारत के उत्तरपूर्वी क्षेत्र शिलाँग शहर का हूँ।''

महाराज ने कहा - ''सच में?'' मानो वे मेरे उत्तर से आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने पुन: मुझसे पूछा, ''जन्म के समय तुम कितने बड़े थे?''

मैंने उत्तर दिया, ''मैं नवजात शिशु के समान रहा होऊँगा।''

महाराज - ''अच्छा''। उन्होंने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा, ''जन्म के समय एक शिशु को जितना स्थान चाहिए, तुमने उतना ही लिया था। किन्तु तुमने क्यों कहा कि तुम्हारा जन्म शिलाँग शहर में हुआ है? स्वभावत: तुम उस कम और नगण्य स्थान में सन्तुष्ट नहीं थे। इसलिए तुम अपनी सीमा का विस्तार करना चाहते थे। तुमने सम्पूर्ण शहर में अपना विस्तार किया। लेकिन तुम वहीं नहीं रुके। उसके बाद तुमने स्वयं को सम्पूर्ण देश में व्याप्त कर लिया। तुम अपने को भारतीय कहने लगे। किन्तु तुम वहीं पर क्यों रुकोगे? तुम क्यों नहीं अपनी सीमा विस्तार करते और सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाते?

''क्या तुम जानते हो कि हम रामकृष्ण संघ के संन्यासी कहाँ के हैं? आदर्श की दृष्टि से देखा जाय, तो हमलोग किसी शहर, देश और जाति के नहीं हैं। हम उस परिवार के सदस्य हैं जिसे 'मानवजाति' कहा जाता हैं। हम सम्पूर्ण विश्व के हैं। हमारे ईश्वर पूरे विश्व के ईश्वर हैं। सम्पूर्ण मानवजाति का दुख-दर्द हमारा दुख-दर्द है। जैसे हम दूसरों से अलग होकर नहीं रह सकते, वैसे ही वे भी हमसे अलग नहीं रह सकते। हम लोग सदैव उनलोगों के साथ एक हैं। हमारा उनसे सम्बन्ध ईश्वर के सर्वव्यापकत्व पर आधारित है।''

सच्चा चमत्कार क्या है?

कोलकाता में हमारा अद्वैत आश्रम है। एक चिकित्सक आश्रम के पास ही रहते थे। वे स्वयं को नास्तिक बताते थे। फिर भी वे आश्रम में आकर आश्रम के अध्यक्ष स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज से बातचीत करना पसन्द करते थे। वे एक दिन महाराज से भेंट करने आश्रम-कार्यालय में आये। उन्होंने महाराज से कहा, ''महाराज, यदि आप मुझे कोई एक चमत्कार दिखा दें, तो मैं अवश्य ही आस्तिक हो जाऊँगा।''

उसी समय स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज का हस्ताक्षर लेने उनके कार्यालय में एक युवा संन्यासी आये। युवा संन्यासी के चले जाने के बाद महाराज ने चिकित्सक से कहा, ''आप चमत्कार के बारे में पूछ रहे थे। अभी तो आपने एक चमत्कार देखा। क्या आप अब ईश्वर पर विश्वास करते हैं?''

चिकित्सक ने आश्चर्य से पूछा – ''चमत्कार ! कैसा चमत्कार?''

महाराज ने चिकित्सक से पूछा - ''क्या आपने उस युवा संन्यासी को नहीं देखा? वह चमत्कार है ! वह युवा, स्वस्थ, उच्च शिक्षित और सुन्दर है। संसार में सफल होने के लिए सभी आवश्यक गुण उसमें विद्यमान हैं। फिर भी, उसने सांसारिक सभी सुखों का त्याग करके संन्यासी बनने का निश्चय किया। क्या यह चमत्कार नहीं है?''

चिकित्सक इसे मानने को तैयार नहीं थे और वे नास्तिक ही बने रहे। चिकित्सक स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज की उक्त बात से सहमत नहीं थे। उन्होंने किसी अन्य प्रकार के चमत्कार देखने की आशा की थी। **(क्रमशः)**

आत्मबोध

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्यवघाततः ।
आत्मानमन्तरं शुद्धं विविच्यात्तण्डुलं यथा ।।१६।।

पदच्छेद – *वपुः तुषादिभिः कोशैः युक्तम् युक्ति-अवघाततः आत्मानम् अन्तरम् शुद्धम् विविच्यात् तण्डुलम् यथा ।*

अन्वयार्थ – **यथा** जैसे **तुषादिभिः** भूसी आदि कोशों (छिलकों) से **युक्तम्** जुड़े हुए **तण्डुलम्** चावल को (आघात देकर अलग किया जाता है, वैसे ही) **वपुः** शरीर तथा **कोशैः** (अन्नमय आदि) कोशों से **युक्तम्** जुड़ी हुई, **अन्तरम्** अन्तर में स्थित **शुद्धम्** विशुद्ध **आत्मानम्** आत्मा को **विविच्यात्** विवेकपूर्वक **युक्ति-अवघाततः** विचार के आघात से (अलग कर लेना चाहिये) ।

श्लोकार्थ – जैसे भूसी आदि से युक्त चावल (धान) पर (ढेकी से) आघात करके उसे छिलकों से पृथक् कर लिया जाता है, वैसे ही पंचकोशों से युक्त शरीर से, विवेक तथा विचारों के आघात द्वारा, उसके अन्तर में स्थित विशुद्ध आत्मा को, अलग कर लेना चाहिये ।

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते ।
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत् ।।१७।।

पदच्छेद – *सदा सर्वगतः अपि आत्मा, न सर्वत्र अवभासते, बुद्धौ एव अवभासेत, स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत् ।*

अन्वयार्थ – **आत्मा** आत्मा **सदा** सदैव **सर्वगतः** सर्वव्यापी है, **अपि** तो भी **सर्वत्र** सर्वत्र **अवभासते न** प्रकाशित नहीं होती, (परन्तु) **स्वच्छेषु** स्वच्छ वस्तुओं (दर्पण या जल) में **प्रतिबिम्बवत्** प्रतिबिम्ब की भाँति, **बुद्धौ** (शुद्ध) बुद्धि में **एव** ही **अवभासेत** प्रकाशित होती है ।

श्लोकार्थ – आत्मा यद्यपि नित्य सर्वव्यापी है, तथापि सभी पदार्थों में उसका आभास नहीं मिलता, (परन्तु) जैसे स्वच्छ दर्पण या जल में प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, वैसे ही यह (शुद्ध) बुद्धि (अन्तःकरण) में ही प्रकट होती है ।

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम् ।
तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा ।।१८।।

पदच्छेद – *देह- इन्द्रिय- मनः- बुद्धि- प्रकृतिभ्यः विलक्षणम्, तत् वृत्ति-साक्षिणम् विद्यात्, आत्मानं राजवत् सदा ।*

अन्वयार्थ – **आत्मानं** आत्मा को **देह-** शरीर **इन्द्रिय-** इन्द्रियों **मनः-** मन तथा **बुद्धि-** बुद्धि (-रूप) **प्रकृतिभ्यः** प्रकृति के कार्यों से **विलक्षणम्** भिन्न समझो, (उस आत्मा को) **राजवत्** राजा की तरह **सदा** सदैव **तत्** उन **वृत्ति-साक्षिणम्** (देह आदि) वृत्तियों का साक्षी **विद्यात्** जानो ।

श्लोकार्थ – आत्मा को सदैव – शरीर, इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि-रूप प्रकृति के कार्यों से भिन्न और राजा की भाँति इन सबका साक्षी मात्र जानो ।

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् ।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी ।।१९।।

पदच्छेद – *व्यापृतेषु इन्द्रियेषु आत्मा, व्यापारी इव अविवेकिनाम् दृश्यते, अभ्रेषु धावत्सु, धावन् इव यथा शशी ।*

अन्वयार्थ – **यथा** जैसे **धावत्सु** दौड़ते हुए **अभ्रेषु** बादलों के बीच **शशी** चन्द्रमा (भी) **धावन्** दौड़ते हुए **इव** के समान (प्रतीत होता है), वैसे ही **अविवेकिनाम्** अविवेकी लोगों को **व्यापृतेषु** क्रियाशील **इन्द्रियेषु** इन्द्रियों के बीच **आत्मा** आत्मा (भी) **व्यापारी** क्रियावान **इव** जैसी **दृश्यते** प्रतीत होती है ।

श्लोकार्थ – जैसे भागते हुए बादलों के बीच स्थित चन्द्रमा भी भागता हुआ प्रतीत होता है, वैसे ही आत्मा अक्रिय है, तथापि उसे इन्द्रियों आदि की क्रिया के बीच देखते हुए अविवेकी जनों को आत्मा भी क्रियाशील प्रतीत होती है ।

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः ।
स्वक्रियार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जनाः ।।२०।।

पदच्छेद – *आत्म-चैतन्यम् आश्रित्य, देह-इन्द्रिय-मनोधियः, स्व-क्रियार्थेषु वर्तन्ते, सूर्य-आलोकं यथा जनाः ।*

अन्वयार्थ – **यथा** जैसे **जनाः** लोग **सूर्य-आलोकं** सूर्य के प्रकाश को **आश्रित्य** आश्रय बनाकर (अपने) **स्व-क्रियार्थेषु** समस्त कर्मों को **वर्तन्ते** सम्पन्न करते हैं, (वैसे ही) **आत्म-चैतन्यम्** आत्मा के चैतन्य को **आश्रित्य** आश्रय बनाकर (अपनी) **देह-** देह, **इन्द्रिय-** इन्द्रियाँ, **मनो-** मन **धियः** बुद्धि आदि (अपने-अपने कार्य सम्पन्न करती हैं) ।

श्लोकार्थ – जैसे सूर्य के प्रकाश को आश्रय बनाकर लोग अपने सारे कार्य सम्पन्न करते हैं; वैसे ही देह, इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि, आत्मा के चैतन्य को आश्रय बनाकर, अपने-अपने कार्य सम्पन्न करती हैं ।

श्रीसीता देवी से श्रीमाँ सारदा देवी

स्वामी निखिलात्मानन्द
रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(गतांक से आगे)

इधर श्रीरामकृष्ण का सारदा से मिलन कैसे होता है? यह भी एक विलक्षण घटना है। श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर में अपनी साधनाओं में डूबे हुए थे। जगन्माता काली का उन्होंने दर्शन किया था। माँ का सतत दर्शन नहीं होने पर वे चिल्लाते, रोते, कभी पछाड़ खाकर जमीन में गिर पड़ते, देखने वालों को लगता कि ये तो पागल हो गये हैं, पर अंदर में जो दैवी उन्माद था, उसे कोई समझ नहीं पा रहा था। उनके गाँव कामारपुकुर में यह समाचार पहुँचा। उनकी माता यह सुनकर बहुत व्याकुल हो जाती हैं कि पुत्र को क्या हो गया? वे श्रीरामकृष्ण को गाँव बुलाकर वैद्यों से उपचार कराती हैं। वैद्यों ने सब देखकर बताया कि इन्हें कोई रोग नहीं हुआ है, यह तो दैवी उन्माद है, यह सुनकर गाँव की महिलाओं ने कहा अरे, इसका विवाह करा दो, तो यह सारा पागलपन दूर हो जायेगा। श्रीरामकृष्ण के भाई रामेश्वर बिना श्रीरामकृष्ण को बताये उनके लिए वधु खोजने लगते हैं, पर कहीं भी उन्हें उचित पात्री नहीं मिलती। बड़े परेशान हो जाते हैं रामेश्वर। माँ चन्द्रा देवी भी बड़ी चिन्तित हो जाती हैं। एक दिन जब श्रीरामकृष्ण ने दोनों को, माँ और भाई को परेशान देखा, तो श्रीरामकृष्ण कहते हैं – अरे इधर-उधर खोजने की आवश्यकता नहीं, जयरामबाटी में रामचन्द्र मुखोपाध्याय के यहाँ मेरे लिये कन्या चिह्नित करके रखी हुई है। सुनकर रामेश्वर को बड़ा आश्चर्य होता है। जब जयरामबाटी जाकर पता लगाते हैं तो पता लगता है – हाँ ! श्रीरामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या तो है, पर कन्या की आयु केवल छः वर्ष है और श्रीरामकृष्णदेव थे चौबीस वर्ष के। आज की दृष्टि में यह अनमेल विवाह उस समय सम्पन्न हो जाता है। इस तरह श्रीरामकृष्ण स्वयं ही अपने इस दिव्य विवाह के बारे में, अपनी संगिनी के बारे में परिचय प्रदान करते हैं। विवाह के बाद श्रीरामकृष्ण पुनः दक्षिणेश्वर में चले आये तथा अपनी साधनाओं में डूब गये। सारदा अपने पित्रालय में धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। वे सोलह-सत्रह वर्ष की हो गईं। सारदा हमेशा यह समाचार सुनतीं कि उनके पति पागल हैं, पागलों जैसा 'माँ माँ' करके चिल्लाते हैं, कभी जमीन में पछाड़ खाकर गिर पड़ते हैं। तब उनके मन में विचार आया कि जब वे बीमार हैं, तब मेरा कर्तव्य है कि उनके पास जाकर उनकी सेवा करूँ। अपने मन की बात वे अपनी सखी से कहती हैं। उनकी सखी उनकी इच्छा को उनके पिता रामचन्द्र से कहती हैं। रामचन्द्र अपनी इस कन्या को लेकर दक्षिणेश्वर के लिये प्रस्थान करते हैं। जयरामबाटी से लेकर कलकत्ते तक का रास्ता पैदल जाते हैं। मार्ग में सारदा ज्वर से बीमार पड़ जाती हैं। वे लोग रात में दक्षिणेश्वर में पहुँचते हैं। श्रीरामकृष्ण सारदा से मिलते ही कहते हैं – अरे तुम इतने दिनों के बाद आई, तुम पहले क्यों नहीं आई? अब मेरा मथुर बाबू कहाँ है, जो तुम्हारी देखभाल करेगा? मथुर बाबू रानी रासमणि के दामाद थे। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – तुमने आने में इतनी देर क्यों लगा दी? बस इतना सुनते ही सारदा को लगता है, अरे ! कौन कहते हैं मेरे पति पागल हैं? कितना प्रेमपूर्ण व्यवहार है मेरे प्रति इनका ! सारदा के मन का सारा क्लेश दूर हो जाता है। श्रीरामकृष्ण अपनी पत्नी को पत्नीत्व के सारे अधिकार देते हैं। एक दिन सारदा रात में उनकी चरण सेवा कर रही हैं। श्रीरामकृष्ण उनसे पूछते हैं – क्या तुम मुझे इस संसार में खींचने आई हो? तुरन्त वह ग्रामबाला कहती हैं – नहीं, नहीं, मैं तुम्हें संसार में खींचने नहीं आई। तुम जिस मार्ग पर चल रहे हो, उस मार्ग पर सहायता करने आई हूँ, इष्ट पथ पर मैं तुम्हारी सहायता करने आई हूँ, बस इतनी कृपा करो कि मुझे भी

अपने साथ ले चलो। यह सुनकर श्री रामकृष्ण बड़े प्रसन्न होते हैं।

एक दिन की घटना है। सारदा श्रीरामकृष्ण के चरणों की सेवा कर रही हैं। अचानक वे श्रीरामकृष्ण से पूछती हैं – अच्छा, तुम मुझे किस दृष्टि से देखते हो? मैं तुम्हारी कौन हूँ? श्रीरामकृष्ण भी तुरन्त कहते हैं, ''जो माँ (काली) मन्दिर में है, जिसने इस शरीर को उत्पन्न किया है और अब नौबतखाने में है, फिर वही इस समय मेरे पैर सहला रही है । सचमुच तुम्हें मैं सदा साक्षात् आनन्दमयी के रूप में ही देखता हूँ ''। श्रीरामकृष्ण सबको माँ आनन्दमयी के रूप में देखते थे। केवल देखते ही नहीं, एक वर्ष के भीतर ही फलहारिणी काली पूजा के दिन, वे अपने ही कमरे में पूजा का आयोजन कराते हैं और सारदा को देवी के आसन पर बिठाकर देवी की षोड़शी भाव से, राजराजेश्वरी भाव से पूजा करके अपने बारह वर्ष के साधना के समस्त फलों को सारदा के चरणों में –

'सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते।।

इस मन्त्र के द्वारा समर्पित कर देते हैं। उस दिन से सारदा मानो जगन्माता हो जाती हैं, सबकी माँ हो जाती हैं। बाद में जब भक्त उनसे पूछते – माँ ! क्या तुम सबकी माँ हो? सारदा कहतीं – हाँ, मैं सबकी माँ हूँ। जड़-चेतन, सबकी माँ हूँ। मैं सज्जनों की माँ हूँ, दुर्जनों की भी माँ हूँ। यह वे केवल कहती ही नहीं, सब उनके जीवन से परिलक्षित होता है।

प्रतिदिन सारदा नौबतखाने से श्रीरामकृष्ण देव की भोजन की थाली सजाकर उनके कमरे में ले जाया करती थीं। एक दिन जैसे ही थाली लेकर के बाहर निकलीं, एक महिला ने कहा – माँ थाली मुझे दे दो, मैं ठाकुर के पास ले जाती हूँ। माँ ने तुरन्त वह थाली उसके हाथ में दे दी। वह महिला श्रीरामकृष्ण देव के सामने थाली रख जाती है। थोड़ी देर बाद सारदा जब उनके कमरे में प्रवेश करती हैं, तो देखती हैं भोजन की थाली ज्यों की त्यों पड़ी हुई है। श्रीरामकृष्ण देव ने उसका स्पर्श भी नहीं किया है। सारदा ने कहा – तुम भोजन क्यों नहीं कर रहे रहे हो? श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – आज तुमने यह क्या किया? तुमने उस महिला के हाथ में थाली क्यों भेजी? क्या तुम जानती नहीं उसका चरित्र कैसा है? माँ सारदा कहती हैं, जानती हूँ। जो हुआ सो हुआ, अब भोजन कर लो। श्रीरामकृष्ण ने कहा – मैं इस भोजन का स्पर्श नहीं कर पा रहा हूँ, मैं भोजन नहीं करूँगा। तुमने ऐसा क्यों किया? हाथ जोड़कर के माँ सारदा फिर कहती हैं, जो हुआ सो हुआ, अब भोजन कर लो। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – अच्छा वचन दो कि आज से कभी किसी के द्वारा इस तरह भोजन की थाली नहीं भेजोगी। हाथ जोड़कर सारदा कहती हैं – नहीं ठाकुर, ! मैं ऐसा वचन तुम्हें नहीं दे सकती। जो भी 'माँ' कह कर मुझसे कुछ चाहेगा, मैं उसे अस्वीकार नहीं कर सकूँगी । तुम केवल मेरे ही ठाकुर नहीं हो, तुम तो सबके ठाकुर हो। बस इतना सुनते ही श्रीरामकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं और भोजन ग्रहण करते हैं। तात्पर्य यह है कि माँ सारदा को उन्होंने जगन्माता के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था। उस दिन से माँ सारदा पापी, तापी सबकी माँ बन जाती हैं।

जब श्रीरामकृष्ण कैंसर की बीमारी से पीड़ित थे, तब एक दिन माँ सारदा उनके पास बैठी हुई देख रही हैं कि श्रीरामकृष्ण उनकी ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं। माँ सारदा ने श्रीरामकृष्ण देव से पूछा - कुछ बोलना चाहते हो क्या? बोलो न क्या बोलना चाहते हो? श्रीरामकृष्ण देव ने (अपने शरीर की ओर दिखाते हुये) कहा – क्या इसे ही सब कुछ करना होगा? क्या तुम कुछ न करोगी? सारदा कहती हैं – मैं स्त्री की जाति, मैं भला क्या कर सकती हूँ। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा – नहीं, नहीं, तुम्हें बहुत कुछ करना है। देखो, ये कलकत्ते के लोग जो हैं, कीड़ों की भाँति बिलबिला रहे हैं, इन सबको तुम्हें देखना है, इनके लिए तुम्हें बहुत कुछ करना है। सारदा कहती हैं – ठीक है, बाद में जो होगा, देखा जायेगा, उसकी चिन्ता न करो। बस आश्वस्त हो जाते हैं। श्रीरामकृष्ण देव के तिरोधान के बाद किस प्रकार लोग ईश्वर की ओर जायें, कैसे भगवान को प्राप्त करने के लिए अग्रसर हों, सबको माँ माँ सारदा मुक्ति का मंत्र प्रदान करती हैं और सबके लिये मुक्ति का द्वार खोल देती हैं। उनका किसी के प्रति कोई भेदभाव

नहीं, जो भी आता है, चाहे वह उच्च वर्ण का हो अथवा निम्न वर्ग का, धनी हो या गरीब, सबको वे मंत्र प्रदान करती हैं तथा सबके पापों को ग्रहण करती हैं। कैसे लोग ईश्वर की ओर आगे बढ़ें, माँ सारदा का केवल यही प्रयास था। जब किसी दिन कोई नहीं आता, तो श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करते हुए वे कहतीं – ठाकुर तुमने कहा था, रोज मुझे कुछ न कुछ करना होगा, पर देखो आज तो कोई नहीं आया, तब दिन के समाप्त होते-होते कोई न कोई अवश्य पहुँच जाता, जिसे माँ मंत्र प्रदान कर कृतार्थ करतीं।

एक दिन बेलूड़ मठ में किसी ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी से दीक्षा की याचना की। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उनसे कहा – नहीं, मैं दीक्षा नहीं दूँगा। अगर दीक्षा लेनी है, तो जाओ, जयरामबाटी में माँ हैं, वे दीक्षा दें तो दें। वे लोग जयरामबाटी पहुँच गये। माँ सारदा आपादमस्तक वस्त्रावृत रहती थीं। लोग केवल उनके चरणों को देख पाते थे। इन लोगों ने उन्हें प्रणाम किया और दीक्षा की याचना की। माँ सारदा ने भी कह दिया – नहीं, मैं दीक्षा नहीं दूँगी। इन्हें वापस जाने को बोल दो। उनलोगों को बहुत दुख हुआ। माँ ने अपने कमरे में जाकर अपनी सेविका से कहा – देखो, बेटा जब विदेश में रहता है, तो अपनी माँ के लिये अच्छी-अच्छी चीजें भेजता है, पर देखो, राखाल (स्वामी ब्रह्मनन्दजी जी के पुकारने का नाम राखाल था) ने कैसे लोगों को मेरे पास भेजा है? अर्थात् जो लोग आए थे दीक्षा के लिए वे अत्यन्त पाप-कर्म में लिप्त थे। पहले तो माँ ने कह दिया, मैं दीक्षा नहीं दूँगी, पर कुछ समय के बाद ही माँ के मन में क्या आता है, वे कहतीं हैं – नहीं, रहने दो, राखाल ने मेरे पास भेजा है, मैं उन लोगों को दीक्षा दूँगी। उनको कह दो, कल सबेरे उनकी दीक्षा होगी। उन्हें दूसरे दिन माँ दीक्षा प्रदान करती हैं। माँ सारदा से दीक्षा लेकर वे लोग बेलूड़ मठ पहुँचे और स्वामी ब्रह्मानन्दजी को यह सारा संवाद सुनाया। ब्रह्मानन्दजी यह सुनकर स्तब्ध रह गये। वहाँ पर स्वामी प्रेमानन्द जी भी थे। वे सुनते ही उच्च स्वर में कहने लगे – जय हो माँ, तुम्हारी जय हो। जिस विष का हम स्पर्श नहीं कर पा रहे हैं, उस विष को तुम ग्रहण कर रही हो। श्रीरामकृष्ण भी ठोक-पीटकर शिष्य बनाते थे। पर माँ ! तुम तो सबके लिए मुक्ति का द्वार खोल दे रही हो ! माँ तुम्हारी जय हो ! इस प्रकार माँ सारदा जगत जननी के रूप में मुक्ति का द्वार पापी-तापी सबके लिये खोल देती हैं। माँ सीता ने भले ही कोई उपदेश नहीं दिये, पर अपने जीवन के माध्यम से सीताजी भी यह दिखलाती हैं कि ईश्वर को कैसे प्राप्त किया जा सकता हैं? कैसे उनकी कृपा प्राप्त की जा सकती है? तथा कैसी अवस्था होने पर भगवान के दर्शन होते हैं?

जिस दिन स्वयंवर होने वाला था, उसके पहले दिन सीताजी पुष्पवाटिका में जाती हैं। वहाँ पर गौरीजी का सुन्दर-सा मंदिर है। उनकी माता सुनयना ने मंदिर में देवी की पूजा के लिए उन्हें भेजा है। सीताजी अपनी सखियों के साथ वहाँ जाती हैं। गोस्वामीजी लिखते हैं –

संग सखी सुग सयानी।गावहिं गीत मनोहर बानी।।

सर समीप गिरजा गृह सोहा।वरनि न जाइ देखि मन मोहा।

बाँधे घाट मनोहर चारी।संत हृदय जस निर्मल बारी।।

सरोवर के किनारे गिरिजा माँ गौरी का सुन्दर मन्दिर है। उसके घाट बड़े सुन्दर बँधे हुये हैं और जल सन्तों के हृदय जैसा निर्मल है। यह सरोवर है मानों संतों का हृदय। संत का हृदय जैसे निर्मल होता है, इसका जल भी वैसा ही स्वच्छ है। सीताजी क्या करती हैं? –

मज्जनु कर सर सखिन्ह समेता।गई मुदित मन गौरि निकेता

पहले सखियों के साथ सरोवर के निर्मल जल में स्नान करती हैं, फिर पूजा के लिये गौरीजी के मंदिर में जाती हैं। पूजा कैसे करती हैं? गोस्वामीजी ने यह नहीं लिखा किस प्रकार पूजा की, क्या अनुष्ठान किया, षोड़शोपचार पूजा की या दशोपचार की, धूप या अगरबत्ती जलाई, आरती की या मंत्र-पाठ, इसका कुछ वर्णन नहीं। क्या लिखते हैं गोस्वामीजी? केवल लिखा – **पूजा कीन्ह बहुत अनुरागा** । वह पूजा परम अनुराग से करती हैं। तात्पर्य यह कि सीताजी सरोवर के निर्मल जल में स्नान कर गिरिजा मंदिर में जाकर गिरिजा की पूजा करती हैं। ये गिरिजा कौन हैं? – **भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।** भगवान शंकर साक्षात् विश्वास और भवानी गिरिजा श्रद्धा हैं, इसलिये स्नानकर पहले श्रद्धा की पूजा होती है। **(क्रमशः)**

भारत की ऋषि परम्परा (१३)

स्वामी सत्यमयानन्द

ऋषि अष्टावक्रजी तीन कारणों से अमर हैं। प्रथम, उनका असाधारण नाम, क्योंकि वे आठ स्थानों से वक्र थे। दूसरा कारण, उनकी पवित्र वंश-परम्परा – वे महान ऋषि उद्दालक के शिष्य कहोड़ अथवा खगोदर के पुत्र थे, जिनका वर्णन छान्दोग्य उपनिषद में आता है। ऋषि उद्दालक को दो सन्तानें थीं। उनकी पुत्री सुजाता और पुत्र महान श्वेतकेतु थे। उद्दालक ने अपने शिष्य कहोड़ को सुयोग्य शिक्षा प्रदान की। शिष्य की धर्मपरायणता और अध्यवसाय को देखकर उन्होंने अपनी पुत्री सुजाता का विवाह उनसे किया। अष्टावक्र द्वारा विशुद्ध अद्वैत वेदान्त पर रचित अष्टावक्र गीता, उनकी अमर ख्याति का तीसरा कारण था।

कहोड़ और सुजाता आनन्दपूर्वक आदर्श दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर रहे थे। अनेक वर्षों बाद सुजाता गर्भवती हुईं। उनके पति कहोड़ नित्य वेदपाठ करते थे। एकदिन जब वे वेदपाठ कर रहे थे, सुजाता को अनुभव हुआ कि उनका गर्भ छटपटा रहा है। गर्भस्थ शिशु के इन शब्दों को सुनकर वे भयभीत हो गईं, 'पिताजी ! आप वेद मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण कर रहे हैं।' कहोड़ यह सुनकर क्रोधित हो गए। उनकी अप्रसन्नता के कारण गर्भस्थ शिशु उसी छटपटाने की अवस्था में स्थित हो गया और आठ स्थानों से टेढ़ा उत्पन्न होने के कारण उसका नाम अष्टावक्र हुआ।

पुत्र के जन्म के पहले ही कहोड़ की मृत्यु हो गई। अष्टावक्र के माता-पिता विद्वान थे, किन्तु निर्धन थे। विवश होकर कहोड़ को आर्थिक सहायता के लिए राजा जनक के दरबार जाना पड़ा। जनक उस समय यज्ञ में उपस्थित थे, इसलिए उन्होंने कहोड़ को प्रतीक्षा करने के लिए कहा। यज्ञ के उपरान्त उन्होंने कहोड़ से कहा कि यदि वे उनके राज-पुरोहित वन्दी से शास्त्रार्थ करेंगे, तभी उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान की जाएगी। जनक ने यह भी कहा कि पराजित व्यक्ति स्वयं को जल में डुबो देगा। बहुत देर तक चले इस शास्त्रार्थ में कहोड़ की पराजय हुई और उन्होंने स्वयं को जल में डुबो दिया।

अष्टावक्र का लालन-पालन उनके मामा श्वेतकेतु के साथ हुआ। दोनों की आयु लगभग समान थी, इसलिए वे मित्रवत् थे। जब वे दोनों नदी में स्नान कर रहे थे, तब श्वेतकेतु ने अष्टावक्र को उनके पिता के बारे में कहा। क्षुब्ध बालक तुरन्त अपने घर गया और माँ से पूरी घटना की जानकारी ली। बारह वर्ष का बालक अष्टावक्र जनक के राजदरबार जाने को उद्यत हुआ। उनके टेढ़े-मेढ़े अंग देखकर और बालक जानकर उसे प्रवेश द्वार पर रोक दिया गया। केवल विद्वानों को ही अन्दर जाने की अनुमति थी। बाध्य होकर अष्टावक्र को द्वारपालों के सामने अपनी विद्वत्ता का प्रमाण देना पड़ा। द्वारपालों ने भी प्रसन्न होकर बालक अष्टावक्र के लिए प्रवेश-द्वार खोल दिए। जैसे ही टेढ़े-मेढ़े अंगों वाले अष्टावक्र ने राजसभा में प्रवेश किया, तो सभी राज-दरबारी उनके कौतुकपूर्ण शरीर को देखकर ठहाका मारकर हँस पड़े। अष्टावक्र भी उन सबकी हँसी शान्त होने तक चुप रहे। उसके बाद उन्होंने अपनी वाणी से सबको चकित कर दिया, 'मुझे तो लगा था कि विदेहराज की सभा में सभी पण्डित होंगे, किन्तु यहाँ तो सब चर्मकार ही जान पड़े।'
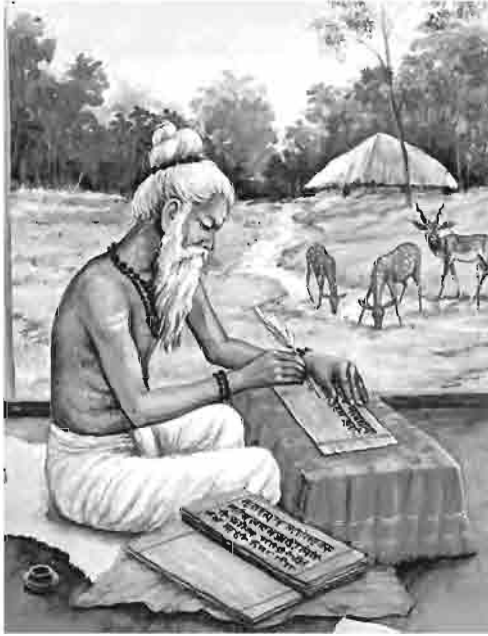
अष्टावक्र ने कहा, 'आत्मा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से अतीत है। आप पण्डित लोग केवल चर्म से ढँके अस्थि-माँस के शरीर को ही देखते हैं और उसे सत्य समझते हैं। इसलिए आपकी बुद्धि किसी चर्मकार से श्रेष्ठतर नहीं है।' उन्होंने राजा जनक से विनती की कि वे उनके राजपुरोहित वन्दी के साथ उसी शर्त पर शास्त्रार्थ करेंगे कि जो पराजित होगा वह स्वयं को जल में डुबो देगा।

सबको लगा कि इस विकृत अंग वाले बालक की पराजय निश्चित है। राजपुरोहित वन्दी भी उपहासपूर्वक अष्टावक्र के सामने आए और उनका अभिवादन किया। इस प्रकार दोनों का शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। शीघ्र ही सबको विदित हो गया

कि यह बाल-ऋषि राजपुरोहित के तर्क-वाक्यों को खण्ड-विखण्ड कर रहा है।

बालक अष्टावक्र ने दिखा दिया कि व्यक्ति का ज्ञान आयु, कद अथवा आकार पर निर्भर नहीं करता। वन्दी की बुरी तरह पराजित हुई। अष्टावक्र अब श्वेतकेतु के साथ पराजित वन्दी को लेकर उस नदी में जाने को उद्यत हुए, जहाँ वन्दी ने उनके पिता और अनेक ऋषियों को जल में डुबो दिया था। वहाँ पहुँचकर वन्दी ने कहा, 'प्रिय अष्टावक्र, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारा नाम अमर रहेगा। किन्तु मैं कभी भी डूब नहीं सकता, क्योंकि मैं जलदेवता वरुण का दूत हूँ। वरुण एक यज्ञ करना चाहते थे और उन्हें वेदपाठी ऋषियों की आवश्यकता थी। यद्यपि वे सभी पराजित ऋषि डुबो दिए गए थे, किन्तु वे जीवित हैं। उन सबको वरुण लोक के यज्ञ में भेज दिया गया था। वह यज्ञ अनेक वर्षों तक चला और अब पूर्ण हो गया है। वे सभी ऋषि अनेक मूल्यवान उपहारों सहित शीघ्र लौटेंगे।' ऐसा कहकर वन्दी वरुणलोक चले गए तथा कहोड़ और अन्य ऋषि जल से बाहर निकले।

कहोड़ एवं अन्य ऋषियों को देखकर अष्टावक्र और श्वेतकेतु अत्यन्त प्रसन्न हुए। ऋषियों ने जब अष्टावक्र के साहसपूर्ण कार्य को सुना, तो उन्हें बहुत आशीर्वाद दिया। कहोड़ अपने साथ तरुण ऋषिद्वय को साथ लेकर समंग नदी के पास आए। उन्होंने अष्टावक्र को नदी में डुबकी मारने के लिए कहा। डुबकी मारने के बाद जब वे लौट रहे थे, अचानक उन्होंने देखा कि उनके शरीर की विकृति चली गई है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण ने जब अष्टावक्र का आलिंगन किया तब उनके शरीर की विकृति दूर हो गई।

ऋषि अष्टावक्र का वर्णन यत्र-तत्र बहुत कम प्राप्त होता है। किन्तु हम मान सकते हैं कि उन्होंने जीवन्मुक्त की भाँति जीवन बिताया होगा और ब्रह्म में लीन हो गए होंगे। श्रीरामकृष्ण देव ने स्वामी विवेकानन्द को एकबार अष्टावक्र संहिता पढ़ने के लिए कहा था। स्वामीजी ने अष्टावक्र के उपदेशों को ईशनिन्दा कहकर उनकी अवहेलना की थी। उसके बाद श्रीरामकृष्ण ने स्पर्शमात्र से स्वामी विवेकानन्द में अद्वैत ज्ञान का संचार कर दिया। स्वामीजी ने बाद में कहा था, 'तब मुझे लगा कि शास्त्रों के उपदेश मिथ्या नहीं हैं।' **(क्रमशः)**

बीती बातें बीते पल

तुम स्वामीजी के शिष्य हो

स्वामी अशोकानन्द

भारत के महान दार्शनिक और प्रथम उप-राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् ने एकबार कहा था, 'भारत में केवल दो या तीन मौलिक विचारक हैं – केवल दो या तीन और स्वामी अशोकानन्दजी उनमें से एक हैं।'

एकबार एक अमेरिकन महिला ने जवाहरलाल नेहरू से कहा, 'आप हमारे देश में शिक्षित, प्रतिभावान और दार्शनिक हिन्दुओं को भेजिए।' नेहरूजी ने कहा, 'क्यों, अमेरिका में तो स्वामी अशोकानन्दजी हैं ही।' स्वामी अशोकानन्दजी ने लगभग चालीस वर्ष अमेरिका में रहकर रामकृष्ण-विवेकानन्द-वेदान्त भावधारा का प्रचार किया।

स्वामी अशोकानन्दजी का पूर्व नाम योगेशचन्द्र दत्त था। उनका जन्म १८९३ में उनके ननिहाल बेकीटाका (तत्कालीन असम क्षेत्र) में और लालन-पालन दुर्गापुर (वर्तमान में बांग्लादेश) में हुआ था। बचपन से ही उनका मन चिन्तनशील था। जब वे उच्च विद्यालय की पढ़ाई कर रहे थे, तब अपने अध्यापक नलिनी घोष के माध्यम से वे स्वामी विवेकानन्द के साहित्य के सम्पर्क में आए। छात्रावस्था से ही वे ध्यान करने का अभ्यास करते थे। १९१२ में वे अपने अध्यापक के साथ बेलूड़ मठ गए थे। वहाँ स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी तुरीयानन्द और स्वामी प्रेमानन्द का दर्शन करके वे अभिभूत हो गए। उन्होंने कहा था, 'मैं सोच भी नहीं सकता था कि पृथ्वी पर ऐसे दिव्य व्यक्तियों का अस्तित्व है। वे सभी प्रशान्त,

भव्य, निर्भय और आनन्द से पूर्ण थे। व्यक्तित्व की दृष्टि से अन्य कोई भी व्यक्ति उनके सम्मुख खड़ा रहने का साहस नहीं कर पाता था। उनकी उपस्थिति उन मुक्त पुरुष का बोध कराती थी, जिन्होंने संसार के समस्त भय की उपेक्षा कर दी हो।' इस प्रकार वे रामकृष्ण-वचनामृत और स्वामीजी के साहित्य का अध्ययन करते रहे।

लगभग १९१२ की घटना है। तब योगेशचन्द्र उच्च विद्यालय की पढ़ाई कर रहे थे। एकबार जब वे माँ काली का ध्यान कर रहे थे, अचानक उन्हें एक दिव्य अनुभूति हुई। उनके ही शब्दों में, 'मुझे अनुभव हुआ कि माँ के स्थान पर स्वामी विवेकानन्द का रूप उपस्थित हो गया है। यह परिवर्तन बिल्कुल स्पष्ट था और उसी समय मुझे लगने लगा कि स्वामीजी मेरे अन्दर शक्ति और भाव का संचार कर रहे हैं। यह एक सुस्पष्ट और असंदिग्ध अनुभव था। जैसे भरे हुए बर्तन से खाली बर्तन में ढाला जाता है और खाली बर्तन बिना किसी व्यवधान के भर जाता है, उसी प्रकार स्वामीजी की शक्ति मुझमें प्रवाहित हो गई। मानो स्वामीजी का मन और मेरा मन लीन हो गया हो। मैं आश्चर्यचकित हो गया। मेरा मन तब सामान्य धरातल पर अवस्थित हुआ। किन्तु यह प्रक्रिया पूर्ण रूप से निष्पन्न हुई।

यह सब अचानक हुआ। वह एक ध्यान की अवस्था थी। मैं माँ काली का ध्यान कर रहा था और अचानक माँ की जगह पर स्वामीजी की आकृति उपस्थित हो गई। यह एक अत्यन्त विलक्षण, अनपेक्षित और आकस्मिक अनुभव था। मैं स्वामीजी के ऊपर ध्यान भी नहीं कर रहा था। कुछ देर बाद मैंने दर्पण में देखा कि मेरी आँखें रक्तिम हो गई हैं। मैं इसके बारे में कुछ भी समझ नहीं पा रहा था।''

उपरोक्त घटना स्वप्न में नहीं घटी थी, यह सब योगेशचन्द्र ने वस्तुत: देखा था और यही उनके लिए दीक्षा थी। इस घटना के कुछ ही दिनों उपरान्त उन्होंने एक अद्भुत स्वप्न देखा कि स्वामीजी उनके घर आए हुए हैं। उन्होंने परवर्तीकाल में इस विषय में कहा था, 'मैं आनन्द से अभिभूत हो गया था। घर के सभी लोगों को मैं तुरन्त बताने गया कि मेरे गुरुदेव आए हुए हैं। वे सभी उस कक्ष में पहुँचे, जहाँ स्वामीजी बैठे हुए थे। किन्तु स्वामीजी मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे की ओर ध्यान भी नहीं दे रहे थे। मैं नीचे बैठकर उनके चरणों को सहला रहा था। वे केवल मुझसे ही बातें कर रहे थे। मैंने उनसे कहा कि आप बाकी लोगों से भी बात कीजिए। उन्होंने मुझे प्रेम से पूर्ण कर दिया। मैं विश्वास नहीं कर पा रहा था कि मैं सचमुच में उनका प्रिय हूँ। मैं जान गया कि वे मेरे गुरु हैं।''

अशोकानन्दजी कहते थे, 'मुझे मन्त्र अपने-आप ही प्राप्त हो गया। एकबार जब मैं सड़क से जा रहा था, मन्त्र मेरे मस्तिष्क में प्रवेश होने लगा। मैं उसे जपने लगा और अत्यन्त आनन्द का अनुभव करने लगा।'

अपने अनुभव का सत्यापन करने के लिए उन्होंने श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य स्वामी प्रेमानन्द को पत्र लिखा। स्वामी प्रेमानन्द जी ने उत्तर दिया, 'तुम्हारा जन्म स्वामीजी का कार्य करने के लिए हुआ है। सचमुच तुम धन्य हो कि तुम्हारी मन्त्र-दीक्षा स्वामीजी से हुई है।'

एकबार उन्होंने स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज को अपने ध्यानावस्था के दीक्षा के अनुभव को बताकर कहा, 'हो सकता है कि यह भ्रम हो, इसलिए कृपया आप मुझे दीक्षा दीजिए।' स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने कहा, 'स्वामीजी ने तुम्हें दीक्षा दी है और तुम इसे भ्रम कहते हो! यदि मैं तुम्हें दीक्षा दूँ, तो क्या तुम उसे भी भ्रम नहीं कहोगे?' उन्होंने अपनी इस अद्भुत दीक्षा के बारे में स्वामी शिवानन्द और स्वामी तुरीयानन्दजी से भी पूछा और सबने एक ही उत्तर दिया कि सचमुच में स्वामीजी ने उन्हें दीक्षा दी है।

फरवरी, १९२३ में श्रीरामकृष्ण देव की जन्म तिथि के अवसर पर स्वामी शिवानन्दजी ने उन्हें संन्यास दिया और उनका नाम स्वामी अशोकानन्द हुआ।

स्वामी अशोकानन्द जी ने स्वामी विवेकानन्द को लौकिक जगत में नहीं देखा था, किन्तु वे स्वयं को स्वामीजी का ही शिष्य मानते थे। स्वामी विवेकानन्द के अन्य गुरुभाई भी उन्हें स्वामीजी का शिष्य मानते थे। १९३१ में अमेरिका जाने के पूर्व वे रामकृष्ण मठ-मिशन के तत्कालीन संघाध्यक्ष स्वामी शिवानन्दजी से आशीर्वाद प्राप्त करने आए। उस समय वे अस्वस्थ थे और शय्या पर लेटे हुए थे। उन्होंने स्वामी अशोकानन्दजी से कहा, 'तुम स्वामीजी के शिष्य हो न?' उन्होंने भी उत्तर दिया, 'हाँ महाराज।' ○○○

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (५)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा

एक बार एक युवक हाथ में छुरी लेकर श्रीरामकृष्ण आश्रम के एक संन्यासी के पास आया और टेबल पर छुरी रखते हुये बोला, "स्वामीजी, यह छुरी अपने पास रखो। यदि मेरे पास रहेगी तो अनर्थ हो जायेगा।" "क्यों रे? क्या बात है? तुझे छुरी की क्या आवश्यकता पड़ गई?" "स्वामीजी, अभी तो मैं मन्दिर में श्रीरामकृष्ण की मूर्ति के सामने आधे घंटे बैठकर आया हूँ, इसलिये मन कुछ शान्त हुआ है, नहीं तो छुरी से मैं उसका खून कर देता।"

"पर तुझे किसी का खून क्यों करना है?"

"हाँ, स्वामीजी, बात यह है कि मैं उसे बहुत ही प्रेम करता था, वह भी मुझे अत्यन्त चाहती थी, हम विवाह भी करने वाले थे। अचानक मैंने उसे दूसरे युवक के साथ देखा। पूछताछ की तो पता चला कि उसका विवाह उस युवक के साथ निश्चित हो गया है। मैंने उससे पूछा, तो कहती है, "हाँ, वह मुझे बहुत पसन्द है। मैं उसी के साथ विवाह करूँगी।" यह सुनकर मुझे गहरा सदमा पहुँचा। उसने मेरे साथ प्रेम का नाटक किया था, मेरी भावनाओं का अनुचित लाभ उठाया। अब मैं उसे जीवित नहीं छोड़ूँगा। ऐसा सोचकर बाजार से यह छुरी खरीदी थी। मैं उसे मारने जा रहा था। यहाँ आश्रम के पास से गुजर रहा था, तो ऐसा लगा मानो मुझे कोई खींच रहा है, इसलिये मैं विवश होकर मन्दिर की ओर गया, मन्दिर में बैठा। मानो कोई मुझे कह रहा था, "तू मेरे सामने देख।" मैं मूर्ति के सामने देखने लगा और थोड़ी देर में मेरा मन शान्त हो गया। जब मैं बाहर निकला, तो मेरे पैर उसके घर के बदले अपने आप मेरे घर की ओर मुड़ गये। कुछ दिन बाद फिर वही भूत मुझ पर सवार हो गया, छुरी लेकर निकला। रास्ते में आश्रम तो आता ही है, फिर विवश होकर मन्दिर की ओर खिंचा चला गया। मन शान्त हो गया और फिर घर आ गया। आज तीसरी बार ऐसा हो रहा है। जैसे कोई प्रचण्ड शक्ति मुझे यहाँ से आगे जाने नहीं देती है। यहाँ आता हूँ और मन शान्त हो जाता है, पर दो-चार दिन के बाद फिर मन वैसा का वैसा उग्र हो जाएगा, इसलिये सोचा कि आपको यह छुरी सौंप दूँ, तो अनर्थ से बच जाऊँगा।"

"हाँ बेटा, सचमुच तू बच गया है। भगवान की तुझ पर असीम कृपा है, नहीं तो आवेश में आकर तू अधर्म कृत्य कर बैठता तो कितने सारे लोग दुखी हो जाते और तेरा जीवन भी नष्ट हो जाता।" उसको स्वस्थ करके स्वामीजी ने समझाया कि यह प्रेम नहीं है, यह तो भयंकर आसक्ति है। उन्होंने कहा, "यदि तूने सचमुच उसे प्रेम किया होता, तो उसके आनन्द में तेरा आनन्द होता। सच्चा प्रेम कभी ऐसा नहीं करेगा। वह तो प्रेमी के लिये अपना जीवन तक त्यागने को तैयार होता है, यह तो उसके साथ तेरा सम्बन्ध मुक्त करने की बात थी। पहले तू जिसके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता था, उसे अब मार डालने को तैयार हो गया। यह प्रेम नहीं, प्रेम की विकृति है। इससे शीघ्र बाहर निकल जा।" फिर स्वामीजी के सत्संग से वह युवक सन्मार्ग की ओर मुड़ गया। ऐसे तथाकथित प्रेम के पीछे पागल होनेवाले और अपना पूरा जीवन नष्ट करनेवाले युवक-युवतियों की कमी नहीं है। ऐसी घोर आसक्ति का परिणाम दुख, चिन्ता, आत्महत्या और जीवन की बर्बादी ही होता है। स्वामी विवेकानन्द "कर्म और उसका रहस्य" लेख में कहते हैं, "दुख का कारण यह है कि हम मोह में पड़ जाते हैं और पकड़े जाते हैं।" इसीलिये गीता कहती है, "सतत कार्य करो, कार्य करो, पर आसक्त मत होओ। जिसके लिये जीवात्मा बहुत लालायित रहती है, ऐसी प्रिय वस्तु में से भी अनासक्त होने की शक्ति अपने में पैदा करो।" वस्तु छोड़ना हो, तब चाहे जितना दुख हो, फिर भी जब इच्छा हो, तब छोड़ देने की शक्ति रखो।

सामान्य रूप से लोग जिसे प्रेम करते हैं, वह प्रेम नहीं है, एक प्रकार की सौदेबाजी है, व्यापारिक लेन-देन है। प्रेम करने वाला यह मानता है, "मैंने उसको इतना प्रेम किया है, तो उसे भी मुझे उतना ही प्रेम करना चाहिये।" ऐसी वृत्ति हो तो यह प्रेम नहीं सौदेबाजी है। सच्चा प्रेम तो बस किसी अपेक्षा बिना देता ही रहता है, बदले में उसे कुछ भी नहीं चाहिये। जिसे कोई अपेक्षा ही नहीं उसे दुख या निराशा कैसे मिलेगी? स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, "कोई भी वस्तु माँगो मत, बदले में किसी वस्तु की अपेक्षा मत रखो। तुम्हें जो देना है, उसे दो। वह वस्तु तुम्हारे पास वापस आएगी, पर

अभी तुम उसके बारे में मत सोचो। वह हजार गुना होकर तुम्हारे पास आएगी। परन्तु तम्हारा ध्यान उस ओर लगा नहीं रहना चाहिये। फिर भी देने की शक्ति बनाये रखो। बस दे दो और वहीं उसकी समाप्ति मानो।''

प्रेम केवल देना जानता है, उसके साथ त्याग जुड़ा हुआ है, उसमें नि:स्वार्थता और उदारता होती है। जबकि आसक्ति में स्वार्थ और संकीर्णता होती है। प्रेम में समर्पण है, त्याग है। आसक्ति में स्वामित्व की भावना है। प्रेम में सदैव सहज प्रसन्नता है। आसक्ति में क्षणिक आनन्द के बाद दुख-ही-दुख है। प्रेम हमेशा ऊपर और ऊपर ले जाता है, वह परमात्मा के पास तक ले जाने की शक्ति रखता है, जबकि आसक्ति मनुष्य को नीचे और नीचे ले जाती है, परमात्मा से दूर और दूर ले जाती है। प्रेम और आसक्ति का अन्तर समझ में आ जाए, तो फिर मनुष्य आसक्ति में से शीघ्र ही मुक्त हो सकता है। जब तक आसक्ति है, तब तक सच्चा सुख, शान्ति नहीं मिल सकती है।

आसक्ति का एक उत्तम उदाहरण राजा भर्तृहरि की अमरफल की कथा है। एक साधु ने राजा भर्तृहरि को अमरफल भेंट में दिया। राजा को उनकी रानी पिंगला अत्यन्त प्रिय थी, उन्होंने सोचा कि ''रानी के बिना मैं अकेला अमर होकर क्या करूँगा, अत: यह फल रानी को दे देता हूँ।'' इसलिये उसने वह फल रानी को दे दिया। रानी एक अश्वपाल के प्रेम में आसक्त थी, इसलिये उसने वह फल अश्वपाल को दे दिया। वह अश्वपाल गणिका के प्रेम में उन्मत्त था, तो उसने वह फल उस गणिका को दिया। गणिका ने सोचा, ''मेरी जैसी स्त्री इस अमरफल को खाकर क्या करेगी, इसके बदले राजा अमर हो, तो अनेक अच्छे कार्य उसके द्वारा होंगे।'' इसलिये उसने वह फल राजा को दे दिया। राजा को फल वापस मिला, तो उन्होंने छानबीन की। जब राजा को सारी बातों का पता चला, तो इस प्रकार के सांसारिक प्रेम को देखकर उनकी आँखें खुल गईं, उन्हें संसार से वैराग्य हो गया और वे संन्यासी बन गये। 'वैराग्यशतकम्' में उन्होंने इस विषय में एक श्लोक लिखा है, ''जिसका मैं चिन्तन करता हूँ, वह मुझसे विरक्त है, वह किसी दूसरे को चाहती है और वह व्यक्ति भी किसी और से आसक्त है और अन्य व्यक्ति मुझसे आसक्त है। उस (रानी को), उस (अश्वपाल को) और गणिका तथा मुझको धिक्कार है !'' इस प्रकार राजा भर्तृहरि को संसार की आसक्ति का ज्ञान होते ही उन्होंने संसार का त्याग कर दिया। लेकिन सामान्य रूप से मनुष्य आसक्ति के कारण दुखी होने के बाद भी उससे मुक्त नहीं हो पाता है। **(क्रमश:)**

वंदन स्वामी विवेकानन्द

वनिता ठक्कर, बड़ोदरा

उठो, जागो गर्जना प्रचंड,बहाती शक्ति-धारा अखंड,
भाव-प्रेरणा स्वरूप जीवंत, वंदन स्वामी विवेकानन्द।
मात-पिता के प्रिय नरेन, श्रीरामकृष्ण की जगको देन
जन-मन में जगा चेतन, दे धर्म-दर्शन को नवजीवन ।
पश्चिम के भौतिक मन में बहाया आध्यात्मिक तरंग ।।
भाव-प्रेरणा स्वरूप जीवंत, वंदन स्वामी विवेकानन्द।
पूर्व की सोई अस्मिता में पुनर्जागृत हुए आदर्श,
गरिमा-गान गूंजन से सम्भला आहत भरतवर्ष ।
भेद-भाव दमन उन्मूलन,लक्ष्य रहा जीवन पर्यंत ।।
सत्यनिष्ठ कोमल करुणामय भक्तिभाव से पूर्ण ह्रदय
प्रज्ञा ज्वलंत, बाहू बलवंत, मृदुल कण्ठ, वाणी बुलंद
अस्तित्व भव्य तेज दिव्य पुलकित नतमस्तक दिगंत ।
गुरु-योगी-तपस्वी-संत, हर रूप में आदर्श रहे ।
जीकर वह जीवन-दर्शन, प्रिय विदेश व भारतवर्ष रहे
सार्थक करें अपना जीवन यही आशीष दीजो भगवंत,
भाव-प्रेरणा स्वरूप जीवंत, वंदन, स्वामी विवेकानंद।

शुभ विचार पहुँचे घर-घर में

बाबूलाल परमार

घूम-फिर कर भीतर-बाहर, घट-मठ में डगर डगर में।
हरजन जीवन के तन-मन में शुभ विचार पहुँचे घर-घर में ।।
देश बनेगा हर एक भाई के आपस के मेल से,
देश बढ़ेगा हर एक भाई के आपस के खेल से,
देश जगेगा हर एक भाई के गीतों की तान से,
देश सजेगा, हर एक भाई के हाथों की शान से,
सबको हासिल होगी सुख सम्पन्नता गाँव शहर में ।
हर जीवन के तन-मन में, शुभ विचार पहुँचे घर-घर में ।।
अपना अपना काम सभी का देश का काम होता है,
अच्छे-अच्छे काम से प्यारे देश का काम होता है,
सबके सुन्दर सपने अपने देश का मान होता है,
चलो चलें अब नये सृजन के दीप जलाने घर-घर में ।
हर जीवन के तन-मन में, शुभ विचार पहुँचे घर-घर में ।।

विवेकानन्द-सा लाल

इंजीनियर श्रीराम अग्रवाल, डोंगरगढ़

करती है प्रार्थना वसुधा हजारों साल ।
तब लेता है जन्म विवेकानन्द-सा लाल ।।
अमेरिका के शिकागो में चमका एक मशाल ।
सारा जग उनकी वाणी से हो गया खुशहाल ।।
विद्युतीय वक्ता तुम देशभक्त योद्धा संन्यासी ।
युगनायक युगाचार्य प्रणाम हे वीर संन्यासी ।।

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

८६. आमों का रसास्वादन करो

भगवान श्रीरामकृष्ण एक दृष्टान्त बताया करते थे । एक बार कुछ लोग आम के एक बगीचे में गये और उसके पेड़ों की पत्तियों, टहनियों और डालियों का हिसाब लगाने में व्यस्त हो गये । वे लोग उनके रंगों की परीक्षा करने लगे, उनके आकारों की तुलना करने लगे और सब कुछ बड़ी सावधानी के साथ लिपिबद्ध करने लगे । इसके बाद उन लोगों के बीच इन सभी विषयों पर बड़ी विद्वत्तापूर्ण चर्चा होने लगी । निश्चय ही यह सब उन लोगों को बड़ा ही रोचक लग रहा था । परन्तु उनमें से एक व्यक्ति उन सभी से अधिक व्यावहारिक था । उसने इन सब बातों पर ध्यान नहीं दिया और उसकी जगह चुन-चुनकर आम के स्वादिष्ट फल खाने लगा । क्या वह दूसरों से कम बुद्धिमान था?

अत: यह पत्तियों तथा डालियों को गिनने तथा उन्हें लिपिबद्ध करने का काम तुम दूसरों के लिये छोड़ दो । इस तरह के कार्य का भी अपना उचित स्थान है, परन्तु आध्यात्मिक राज्य में ऐसा नहीं है । इन पत्तियाँ-गिननेवालों में तुम्हें कभी कोई महान् आध्यात्मिक व्यक्तित्व देखने को नहीं मिलेगा ।

धर्म में ही मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य तथा सर्वोच्च महिमा विद्यमान है; और उसकी उपलब्धि के लिये ज्यादा परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती । यदि तुम सच्चे भक्त बनना चाहते हो, तो तुम्हारे लिये यह सब जानना जरा भी आवश्यक नहीं है कि श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ था या व्रज में, वे क्या करते थे, या किस तिथि को उन्होंने गीता का उपदेश दिया था । इस ग्रन्थ तथा इसके लेखक के विषय में अन्य सारी जानकारियाँ विद्वानों के मनोरंजन के लिये हैं । वे अपनी इच्छानुसार वह सब करते रहें । उनके विद्वत्तापूर्ण विवादों को 'शान्ति: शान्ति:' कहो और आओ, हम लोग 'आमों का रसास्वादन' करें । (४/२१-२२)

८७. भगवान बुद्ध का देहत्याग

उनकी मृत्यु के समय के उनके वे शब्द सर्वदा मेरे हृदय को रोमांचित करते रहे हैं । वे वृद्ध थे, कष्ट पा रहे थे, अपनी मृत्यु के कगार पर थे और उसी समय वह तिरस्कृत चाण्डाल आया, जो मृत पशुओं के शव पर जीवन-निर्वाह करता था । हिन्दू उन्हें नगरों में नहीं आने देते थे । इन्हीं में से एक ने उन्हें भोजन के लिये निमंत्रित किया और वे अपने शिष्यों के साथ गये । बेचारा चाण्डाल अपनी समझ के अनुसार इस महान् आचार्य की सर्वोत्तम सेवा करना चाहता था, अत: उसने उनके लिये बहुत-सा सूकर का मांस तथा चावल की व्यवस्था की थी । बुद्ध ने उस ओर देखा । शिष्यगण हिचकिचा रहे थे और आचार्य ने कहा, "ठीक है, मत खाओ, तुम्हारी हानि होगी ।" परन्तु वे स्वयं चुपचाप बैठ गये और खाने लगे । समता के उपदेशक को (चाण्डाल) चन्द का भोजन, यहाँ तक कि सूकर का मांस खाना होगा । वे बैठकर उसे खाने लगे ।

वे मरणासन्न थे । उन्होंने मृत्यु को आते देखा और बोले, "इस वृक्ष के नीचे मेरे लिये कुछ बिछा दो, क्योंकि लगता है कि अन्त सन्निकट है ।" वे पेड़ के नीचे बैठे थे, लेट गये; वे और बैठे न रह सके । फिर पहला काम जो उन्होंने किया, वे बोले, "चन्द के पास जाओ और कहो कि वह मेरे सर्वाधिक हितकारियों में से एक है, उसके भोजन से मैं निर्वाण को प्राप्त हो रहा हूँ ।"

और तब कई लोग उपदेश लेने को आये । एक शिष्य ने कहा, "इस समय उनके पास मत जाओ, प्रभु का देहावसान हो रहा है ।" सुनते ही प्रभु ने कहा, "उन्हें अन्दर आने दो ।"

फिर कोई अन्य आया और शिष्य उन्हें अन्दर नहीं जाने दे रहे थे । पुन: उन्हें जाने दिया गया और तब देह त्यागते हुए प्रभु बोले, "हे आनन्द, मैं मर रहा हूँ । मेरे लिये रोना मत । मेरे बारे में सोचना मत । मैं तो चला गया । परिश्रम करके स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो । तुममें से हर एक वही है, जो मैं हूँ । मैं बस तुम्हीं लोगों में से एक हूँ । आज मैं जो कुछ हूँ, वह मैंने ही बनाया है । प्रयास करके स्वयं को मेरे समान बना लो ।"

ये हैं बुद्ध के स्मरणीय शब्द – "केवल इसलिए विश्वास मत करो कि कोई पुरानी पुस्तक प्रमाण के रूप में प्रस्तुत की गयी है । केवल इसलिए विश्वास मत करो कि तुम्हारे पिता ने कहा है कि तुम्हें इस पर विश्वास करना चाहिए । मात्र इसलिए विश्वास मत करो कि तुम्हारे जैसे अन्य लोग भी इस पर विश्वास करते हैं । सबकी जाँच करो, सबको परख कर देखो और तब विश्वास करो, और यदि तुम्हें लगे कि यह सबके लिये हितकर है, तो उसका सबके बीच वितरण करो ।" और इन शब्दों के साथ तथागत ने अन्तिम साँस ली । (CW, 3:527-528) ○○○

युवकों के आदर्श चिर युवा स्वामी विवेकानन्द

सुखदराम पाण्डेय, लखनऊ

बड़ा बेचैन है युवा दिल। सदा धड़कता है अपने अरमानों के आसमान को छूने के लिए। चलते रहना इसका स्वभाव है। वस्तुत: दिल के कारण ही हम युवा हैं। चिर-युवा विवेकानन्द अपनी दिलेरी के कारण ही युवाओं के आदर्श हैं। यदि सृष्टि के अब तक के इतिहास को एक शरीर माना जाय, तो विवेकानन्द इसके दिल हैं। वे मनुष्यता की धड़कन बनकर अपना वचन निभा रहे हैं – ''जब मैं शरीर में नहीं रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे साथ काम करेगी।'' वे हमारे नित्य सहचर हैं।

न थकना युवा होने की निशानी है। दिल कभी नहीं थकता। इसका थकना शरीर की बीमारी है। इसका रुकना शरीर की मौत है। यह सोता भी नहीं, सदा जागता रहता है। नित्य जागरण, नित्य गति इसकी नियति है। यह युवा है, जिसके कंधे पर सारा शरीररूपी समाज विश्राम करता है। इसका सोना सारे समाज का दुर्भाग्य है। दिनकर जी लिखते हैं –

ये सोये तो दुर्भाग्य हमारा जागेगा।
हम छिड़क खून के छीटें इन्हें जगायेंगे।

युवाओं में नींद नहीं होती। यदि नींद है भी, तो ये कभी सोते नहीं। यदि यह सोये, तो इसे जगाये रखना आवश्यक है। क्योंकि विवेकानन्द ने हमारी नसों में जागरण का संगीत बहाया है – **उठो, जागो और लक्ष्यप्राप्ति तक रुको मत**। वह ठहरे हुए तालाब में ऐसा पत्थर उछाल गये हैं, जो इसे सदा तरंगायित रखता है। किसी ने बड़ी अद्‌भुत बात कही है – ''**जोर से पत्थर उछालो, नींद को नहीं सोने दो।**''

विवेकानन्द ने हमारी नींद को जगाया है। उन्होंने हमारे पौरुष को ललकारा है। आवाज दी है उन्होंने हमारी अदम्य इच्छा शक्ति को, जो झुकना नहीं जानती, जिसे रुकना नहीं आता, जिसके पाँवों में वायु की गति और जिसके दिल में अग्नि की ज्वाला है।

जवानी एक तरंग है, यह जीवन का त्योहार है, जो मातम में डूबने के लिए नहीं, जश्न में उतरने, उतराने और समय की धारा को चीरकर पार जाने के लिये होती है। किसी ने जवानी को परिभाषित किया है –

मौत के माथे पे लिख दे जिन्दगी, वह है जवानी।
आग पानी में लगाये, कहे जीवन की कहानी।।
पलट दे बिगड़े नसीबां को, बदी को मात दे दे,
तोड़ दे कारा, अँधेरी रात को सुबहो-सुखन दे,
दो किनारों को मिलाये, धूल पर्वत को बनाये,
सोख ले सागर, सितारों को धारा पर ला बिछाये,
चाल में भूचाल हो, हाथों में हो दिल की रवानी,
समय के सीने पे रखे पाँव, वह है जवानी।।

समर्पण नहीं, सामना करना युवाओं का धर्म है। हर परिस्थिति से टकराना, हर राह को आजमाना और अपने लक्ष्य में सफल होना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। यदि देश का, सारी मानवता का हम पर कोई कर्ज है, तो वह यह है कि हमारा व्यक्तिगत जीवन सारी सृष्टि के सामूहिक बलिदान का फल है, अत: हममें से प्रत्येक को सबके कल्याणार्थ अपनी बलि देनी है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''मत भूलना कि तुम जन्म से ही माता के लिये बलिस्वरूप रखे गये हो।'' स्वामीजी की यह चेतावनी है हम सबके लिये। किन्तु हम अपने मूल को सींचने के बदले उसे खोदकर नष्ट करने को तत्पर हैं। हम भूल गए हैं कि हम अपनी जड़ों के कारण ही जीवित हैं, इनके बिना हमारा जीवन-वृक्ष शीघ्र ही सूख जाएगा।

हमारा मूल विवेक है। हम विवेक की संतान हैं। आनन्द हमारा स्वभाव है। इस प्रकार विवेकानन्द हमारी परिभाषा है। हम अपनी परिभाषा से भिन्न कैसे हो सकते हैं? स्वामीजी कहते हैं – 'तुम तो ईश्वर की संतान हो, अमर आनन्द के भागीदार हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। अतएव तुम स्वयं को दुर्बल कैसे कहते हो? उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर लो। यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहते हो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है।''

जो शक्ति का स्रोत है, स्वयं शक्तिस्वरूप है, यदि

वही भिखारी बन जाये, तो फिर त्रासदी का अन्त नहीं है। आत्म-विस्मृति एक अभिशाप है, जिससे विश्व की कदाचित् अधिकांश जनसंख्या त्रस्त है। स्वामी विवेकानन्द ने हमारी शक्ति का स्मरण कराकर हमें युवोचित गुणों से युक्त किया है। हार को भी जीत में बदल देने का मंत्र देकर उन्होंने हमें शाश्वत विजय में ला खड़ा किया है।

अवस्थाओं में सर्वोत्तम अवस्था युवावस्था है। बच्चा युवा बनना चाहता है, किन्तु युवा बूढ़ा नहीं होना चाहता। बच्चा बड़ों की नकल करता है और उस समय की कल्पना करता है, जब वह बड़ा हो जायेगा। किन्तु युवा की कल्पना में बुढ़ापे की कोई जगह नहीं है। चिरयुवा होना हम सबकी आन्तरिक अभिलाषा है। क्यों? क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि यह हमारी वास्तविक अवस्था है। जैसे हम पूर्ण होना चाहते हैं, क्योंकि पूर्णता हमारा निजी स्वरूप है। वैसे ही हम युवा बने रहना चाहते हैं, क्योंकि यही हम हैं। हम न बच्चे हैं, न बूढ़े। हम सब हैं युवा। बच्चा भविष्य की आशा में जीता है और बूढ़ा भूत की याद में। ये आशायें और यादें युवावस्था के लिए हैं। अतः युवावस्था हमारा वर्तमान है। यह सदा है। जो सदा है, सर्वोत्तम है, वही ईश्वर है।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ गीता १०/४१

"जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उसे तुम मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति जानो।"

युवा ईश्वर की विशेष अभिव्यक्ति है। यह सदानन्द है – उत्साह, उल्लास, शक्ति और आशा से परिपूर्ण है। कुछ भी करने की क्षमता है इसमें। यह वास्तव में शारीरिक अवस्था से अधिक मानसिक अवस्था है, मानसिक अवस्था से अधिक बौद्धिक है, और बौद्धिक से भी अधिक आध्यात्मिक है। यह हमारी आध्यात्मिकता ही है, हमारी आत्मा है, जो हमें आमृत्यु दुर्दमनीय बनाये रखती है।

स्वामी विवेकानन्द की सारी आशा युवाओं पर टिकी हैं, क्योंकि यह युवा ही है, जो कर्ता है। यही प्राण है। शेष सब पुर्जे हैं, अंग-प्रत्यंग हैं, जो किसी भी यांत्रिक या मानवीय व्यवस्था में प्राणशक्ति के कारण ही क्रियाशील दिखते हैं। स्वामीजी कहते हैं – "मेरी आशा, मेरा विश्वास नवयुवकों पर है। उन्हीं में से मैं अपने कार्यकर्ताओं का संग्रह करूँगा। सिंह-विक्रम से युक्त वे ही देश की सारी समस्याओं का समाधान करेंगे।"

यौवन सर्वत्र है, सार्वभौमिक है। इसके कारण ही गति है, इसके कारण ही जीवन है। अवस्था-विशेष पर शरीर में उठने वाला गुबार उसकी सर्वव्यापिनी शक्ति का लक्षण मात्र है। सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिये स्थूलताओं की जरूरत है। इसीलिए आकार-प्रकार हैं, इसीलिए शरीर हैं, वस्तुएँ हैं, हृदय हैं, अन्यथा कर्तृत्व तो सूक्ष्मतम का ही है। अदृश्य के कारण ही दृश्य हैं, कर्म और क्रियायें हैं। अतः शरीर के विकास का अभिमान करके बच्चों से अपेक्षा और वृद्धों की उपेक्षा करना अनुचित है। बच्चे एवं बूढ़े दोनों वस्तुतः युवा हैं। बचपन जवानी का विश्राम है और बुढ़ापा बहिष्कार। विश्राम करता, सोता हुआ आदमी स्वप्न देखता है और बहिष्कृत व्यक्ति स्वयं को व्यवस्था से अलग-थलग कर लेता है। अपने को अप्रासंगिक मानता है। देश की आधी से अधिक आबादी इस प्रकार निष्क्रिय होकर मुख्य धारा से कट जाती है। वास्तव में ये सभी प्रासंगिक हैं। **युवावस्था न सोने के लिये है, न रोने के लिये और न कोने में छिपने के लिये है। यह रणभूमि में युद्ध करने के लिए है। यह हमारी स्वतन्त्रता का उद्घोष है।**

चाहे वृद्ध हो, बालक सभी युवा हैं। समय और उम्र तो कल्पना है और कोई कल्पना यथार्थ का सामना करने में समर्थ नहीं है। जवानी एक यथार्थ है, जो हमारे भीतर एक विचार बनकर बैठी है। आग चाहे धधक रही हो, चाहे धुएं और राख से लिपटी हो, है वह आग ही। बचपन के धुएं और बुढ़ापे की राख के पीछे आग है। इस आग को जलाये-जगाये रखना हमारा धर्म है।

हमें सोना नहीं है, सीना तानकर आगे बढ़ना है। स्वामीजी कहते हैं – "बढ़े चलो। मरते दम तक गरीबों और पददलितों के लिए सहानुभूति – यही हमारा आदर्श वाक्य है। वीर युवकों बढ़े चलो। ईश्वर के प्रति आस्था रखो। किसी चालबाजी की आवश्यकता नहीं, उससे कुछ नहीं होता। दुखियों का दर्द समझो और ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो, वह अवश्य मिलेगी।"

मृत्यु पर जीवन की होगी जीत
एक कदम आगे बढ़ा रे मीत।
छुद्र आशायें, छिछोरी कामनायें त्यागकर,
कह विदा सोने को सारी रात साथी जागकर
कर ले अपने निज से साँची प्रीत,
एक कदम आगे बढ़ा रे मीत।
है कौन जो रोक ले सूरज का शौर्य-चक्र
कौन है थामे जो बढ़कर समय की गति वक्र
आग है तुझमें भगेगा शीत
एक कदम आगे बढ़ा रे मीत।

युवा होने के लिए नि:स्वार्थ होना जरूरी है। स्वार्थी व्यक्ति कभी युवा नहीं होता। वह सदा बच्चा बना रहता है। आगे बढ़कर दूसरों की सहायता करना अपने कारावास से बाहर आने के समान है। हम सब स्वयं की रची गई सीमाओं के बंदी हैं। इन सीमाओं को तोड़ना और बन्दीगृह से बाहर आना हमारा पावन कर्तव्य है। बाहर आने की सर्वश्रेष्ठ पद्धति है – हममें प्राकृतिक रूप से विद्यमान प्रेम और करुणा की डोर से उन लोगों की टूटती साँसों और बुझती आशाओं को जोड़ना है, जिनके जीने-मरने की पृष्ठभूमि या अग्रभूमि में न तो कोई हँसी है, न कोई आँसू। यूँ ही आये, यूँ ही चले गये। किसी ने उनके आवागमन पर ध्यान ही नहीं दिया। स्वामी विवेकानन्द ने युवाओं को अपना जीवन ऐसे ही अज्ञात-अनाम-उपेक्षित लोगों से जोड़ने, निर्भय होने और भारत सहित पूरे विश्व को जगाने का दायित्व सौंपा है –

''युवको ! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिये इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें सौंपता हूँ। प्रतिज्ञा करो कि तुम अपना सारा जीवन इन लोगों के उद्धार कार्य में लगा दोगे, जो दिनोंदिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं। यदि तुम सचमुच मेरी संतान हो, तो तुम किसी वस्तु से न डरोगे, न किसी बात पर रुकोगे। तुम सिंह तुल्य होगे। हमें भारत को और पूरे संसार को जगाना है।''

हम जगायेंगे उन्हें जो सो गये हैं।
खोज लेंगे आज, कल जो खो गये हैं।
हाशियो पर रख जिन्हें आगे बढ़े कुछ,
रोशनी दे अन्य को जो खुद गये बुझ,
अपना लेंगे हम उन्हें, जो रो गये हैं।
खोज लेंगे आज, कल जो खो गये हैं।।
मार मौसम की सदा जिन पर पड़ी है,
जिनका जीवन दुख की लम्बी लड़ी है,
सच को समझें वे, जो मिथ्या हो गये हैं।
खोज लेंगे आज, कल जो खो गये हैं।।
वे भी समझें जो सदा रोड़े बने हैं गैर के,
भूलकर अपनापन काँटे बन बिछे निज पैर के,
उन्हें भी अमृत बनायेंगे, जहर जो बो गये हैं।
खोज लेंगे आज, कल जो खो गये हैं।।

जिन्होंने खो दिया अपना यौवन और स्वयं खो गये, उन्हें खोज निकालने का काम युवाओं का है।

खोने वाला, रोने वाला और दूसरे की राह में काँटे बोने वाला युवा नहीं है। जो इन मार्गों पर गया, उसने अपना यौवन खोया। कायरता, कृपणता धोखेबाजी, व्यसन, वासना एवं ओछापन युवोचित गुण नहीं है। ये अंधेरी रात के काले कतरे हैं, जिन पर प्रकाश डालने का काम युवाओं का है।

विवेकानन्द ऐसे ही एक युवा थे, जो आजीवन सत्यनिष्ठ रहे। इसीलिए वे सदा के लिये युवाओं के हृदय साम्राज्य के सम्राट हैं। एक राजा ही राजत्व को समझ सकता है। एक सिंह ही सिंहत्व का सच्चा प्रतिनिधि है। इसी प्रकार एक युवा ही युवा को गढ़ सकता है। स्वामीजी ने कहा है – ''मैंने युवाओं को संगठित करने के लिये ही जन्म लिया है।'' यह ऐसा संगठन होगा, जिसके सदस्य केवल व्यक्ति ही नहीं होंगे, उन्हें ऐसी तरंगों में बदल दिया जायेगा, जो अप्रतिहत वेग से चलकर दीन-हीनों, पददलितों को शिक्षा, स्वास्थ्य, सम्पन्नता और सुख का उपहार सौंपकर उनके मलिन आँगन की बहार बनेंगे, उनके कुम्हलाये चेहरों पर खुशी की लहर लाकर उन्हें मनुष्य होने का अनुभव प्रदान करेंगे।

स्वामीजी ने उन्हीं बातों को प्रचारित किया, जिन्हें उन्होंने स्वयं अपनाया एवं जीया। इसलिये ये जीवन्त आदर्श हैं। ऐसी बातों का प्रचार निष्फल हो जाता है, जिन्हें स्वयं जीया नहीं जा सके। मृत आदर्शों पर जीवन की आधारशिला नहीं रखी जा सकती। स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में महर्षि अरविन्द ने कहा है – 'देखो, देखो, देशवासियों के दिलों में विवेकानन्द आज भी जीवित हैं।'' इस जीवन्तता के कारण ही वे चिरयुवा हैं। ○○○

अक्षय उर्जा का स्त्रोत : भारतीय युवा

प्रो. मधुर मोहन रंगा

विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर (छ.ग.)

देश के सर्वांगीण विकास में युवाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। युवाशक्ति के साथ समग्र विकास की अवधारणा जुड़ी हुई है। हमारे देश में विश्व के सब से अधिक ६०% युवा ३५ वर्ष से कम आयु के हैं और कुल जनसंख्या के ५०% युवा २५ वर्ष से कम उम्र के हैं । १२१ करोड़ जनसंख्या वाले देश में आधी से अधिक जनसंख्या युवाओं की है। आने वाले १० वर्षों में युवा जनसंख्या ६० करोड़ तक हो जायेगी। कभी-कभी देश की बढ़ती जनसंख्या को अभिशाप कह दिया जाता है, परन्तु यह बात सही नहीं है। यदि हम सकारात्मक दृष्टकोण से विचार करें, तो देखेंगे कि हमारे देश में श्रम-साध्य जनसंख्या की कमी नहीं है, वे कार्यकुशल हैं। अत: कर्मशील जनसंख्या को देश के सकल घरेलू उत्पाद में योगदान के लिये लगाया जा सकता है। इसे हम कौशल विकास के संदर्भ में देख सकते हैं। अत: युवाओं की अधिक जनसंख्या (Demographic Divident) के रूप में है, यदि उन्हें यथोचित स्थान उत्तम वातावरण क्षमतानुसार कार्य प्रदान किये जायँ। देश के समग्र विकास में युवाओं का योगदान प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है, चाहे वह विज्ञान, कला, वाणिज्य, वानिकी, अंतरिक्ष, औषध विज्ञान या अन्य कोई भी क्षेत्र हो, परन्तु आज के वैश्विक जगत में विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों से क्या भारतीय युवा अनभिज्ञ है? वह क्या सोचता है? उसके मन में क्या है? वह क्या करना चाहता है? यह विषय समसामयिक है। क्योंकि देश में घटित घटनाओं का प्रभाव भी उसके मन-मस्तिष्क पर पड़ता है। जब एक युवा से पूछा – तुम भविष्य में क्या करना चाहते हो? उसका उत्तर था – मेरा तो उद्देश्य केवल अधिकतम पैसा कमाना है, मैं तो चार्वाक के सिद्धान्त पर जीवन जीना चाहता हूँ। उससे स्पष्ट करने को कहा, तो उसका उत्तर युवाओं की सोच को बताता है। उस युवा के अनुसार फाइव डिजिट में वेतन, कार, तीनमंजिला भवन, दो बच्चे और पत्नी, यही चाहिए। आज के इस भौतिकतावादी युग में बच्चे भी इन विचारों से प्रभावित हैं।
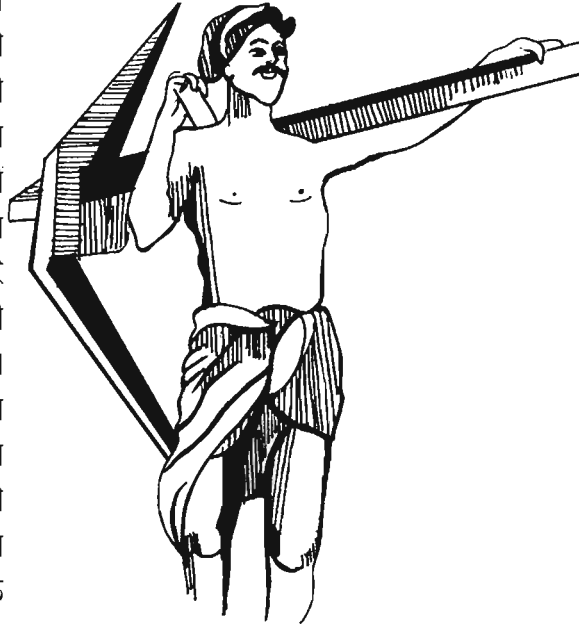
कोलकाता की एक छात्रा से विद्यालय में निबन्ध लिखने को कहा गया जिसका विषय था 'परिवार'। छात्रा ने अपने घर की कहानी लिख दी। उसने लिखा – 'बड़ी होने पर मम्मी को पापा से दूर अपने पास रखूँगी।' यह परिवार की स्थिति और मानवीय संवेदनाओं को व्यक्त करती है। अभी हाल में देश की शिक्षण संस्थाओं में जैसा वातावरण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर हो रहा है, वह वास्तव में युवा वर्ग की मन की दिशा व दशा का वर्णन करता है। विश्वविद्यालय ज्ञान के सृजन, पहुँच, नव-आचारों और अनुसंधान आदि से विश्व विख्यात होते हैं। परन्तु जब दिशा देनेवाली संस्थाएँ ही उचित मार्गदर्शन प्रदान नहीं करती हैं, उस स्थिति में युवा भ्रमित होता है। ये कुछ उदाहरण वर्तमान स्थिति को इंगित करते हैं। यदि हम वैश्विक परिदृश्य में देखें, तो तथाकथित विकसित कहे जाने वाले राष्ट्रों में भी शिक्षण संस्थाओं में आये-दिन गोली-बारी की घटनाएँ होती हैं, तभी अमेरिका के राष्ट्रपति को कहना पड़ता है कि हमें हमारी 'बंदूक पॉलिसी' पर पुन: विचार करना होगा।

यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखे, तो पायेंगे कि देश की स्वाधीनता के बाद देश की शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तनों के लिए, कई शिक्षा आयोगों का गठन किया गया, परन्तु हमारी शिक्षा प्रणाली में पश्चिम के साम्राज्यवादी सोच, उपनिवेश सोच, परभाषा प्रभाव, नवउपनिवेशवाद, भाषाई उपनिवेशवाद, परावलम्बी सोच आदि विचार छद्म रूप में हमारी शिक्षा व्यवस्था में प्रवेश कर रहे है, जिससे आज भी हमारी मानसिकता में विशेष परिवर्तन नहीं आया है। वर्तमान में भी पश्चिम की श्रेष्ठता को प्रत्येक क्षेत्र में तथाकथित साहित्य में पढ़कर वैसा ही विचार बनाते हैं, जबकि विभिन्न क्षेत्रों में हमने दक्षता प्राप्त की है। प्राचीन विज्ञान, कला, वाणिज्य आदि क्षेत्रों में उत्कृष्ट अनुसंधान हुए हैं, परन्तु इनका ज्ञान आम विद्यार्थियों को अभी भी नहीं है। अभी भी यही धारणा है कि विज्ञान, कला, वाणिज्य, आदि में पश्चिम का योगदान है। ऐसी बातों से युवकों का मन प्रभावित होता है।

देश का एक शोध-छात्र देश-विरोधी नारे लगाता है, जबकि एक स्नातक से कम शिक्षित युवक देश की अस्मिता के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता है। यदि हम समग्र रूप से चिन्तन करें, तो देखेंगे कि देश की युवा शक्ति आज भी देश के सर्वांगीण विकास के पाथेय को लेकर चल रही है, किन्तु पश्चिम की वैभवपूर्ण जीवन शैली के प्रभाव से इसकी गति धीमी है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार १५ से २९ वर्ष की उम्रवालों में आत्म-हत्या की प्रवत्ति बढ़ी है। विचार योग फाउन्डेशन ने बताया कि भारत में ४२% छात्र ऊँचे लक्ष्यों के कारण निराश, २०% आक्रमक, १५% आंशकित और ६% जीवन से निराश हैं। मीडिया के संवेदनहीन खबरों से युवकों पर नकारात्मक, निराशाजनक प्रभाव दीखता है, परन्तु अब परिदृश्य बदला है।

भारतीय युवक पुरुषार्थी हैं – युवावर्ग **स्टार्टअप** में कुशल नेतृत्व प्रदान करने का प्रयास कर रहा है। देश में कौशल विकास ऐजेन्सियाँ, कौशल विकास बैंक, विश्वविद्यालय और अन्य निकाय बनते जा रहे हैं। युवा-उद्यमियों को आज प्रोत्साहन की आवश्यकता है। उनमें नेतृत्व के गुणों का सृजन करना होगा, यथा अनुशासन, साहस, उत्तरदायित्व, श्रमशीलता, लगन, निर्णय लेने की क्षमता और उत्तम व्यवहार। देश के युवाओं की सकारात्मक सोच का ही परिणाम है कि छत्तीसगढ़ के बोडला ब्लॉक ग्राम छुहीनाला के १२ बैगा युवाओं ने वह कारनामा कर दिखाया, जो नेता-अफसर तक नहीं कर पाये। इन युवाओं ने जिद्द में आकर महज ८ दिन में दो किलोमीटर सड़क बना डाली, इससे छुहीनाला समेत आस-पास के ३ गाँवों तक पहुँचना आसान हो गया है। (भास्कर २९ जनवरी २०१६)। इसी प्रकार दृढ़ इच्छाशक्ति के आधार पर आसाम के वनवासी, जादवपयोग ने १३०० एकड़ बंजर भूमि को अकेले ही वनाच्छादित कर दिया। पटना के आनन्दकुमार के द्वारा संचालित संस्थान से ३० गरीब प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का चयन विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं जैसे भारतीय तकनीकी संस्थान (IIT) और अन्य में हुआ। ऐसे ही भुवनेश्वर (उड़िसा) के बुधिया सिंह की प्रतिभा ने उसे सबसे छोटा मैराथन धावक बना दिया। तथागत अवतार तुलसी आज विख्यात भौतिक विज्ञानी की श्रेणी में आता है। इन्होंने ९ वर्ष की आयु में दसवीं कक्षा, १० वर्ष की आयु में स्नातक विज्ञान, १२ वर्ष की आयु में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। नेशनल ज्योग्राफिक चैनल ने इन्हें (My Brilliant Brain) कार्यक्रम में आमंत्रित किया। चाणक्य पंडित की प्रतिभा के कारण उसे गूगल बॉय का खिताब मिला। अतः भारतीय युवा में पुरुषार्थ है, वह परिस्थितियों को अपने अनुकुल बनाने में समर्थ है। मनुष्य को परिस्थितियों का दास नहीं, बल्कि उसे दास बनाने की उसमें शक्ति होनी चाहिए। यही सफलता का राज है, जो भारतीय युवकों में है। हजारों ऐसे उदाहरण हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय मेधा ने विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य कर देश का नाम उज्ज्वल किया है।

उपभोक्तावादी संस्कृति का दुष्प्रभाव – सामर्थ्यशाली होने के बाद भी भारतीय युवा आधुनिकता की चकाचौंध से स्वकेन्द्रित प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो रहा है, जिसका महत्वपूर्ण कारण उपभोक्तावादी संस्कृति है। इसीलिये आज मानवता का ध्रुवीकरण 'विश्व एक परिवार' व 'विश्व एक बाजार' के दो ध्रुवों की ओर जा रहा है।

घर को बाजार न बनायें – घर-परिवार तथा बाजार के नियम एक दूसरे से अलग ही नहीं, वरन् एक दूसरे के विरुद्ध भी है। घर-परिवार का नियंत्रित एवं नियमित प्रेम है, जबकि बाजार, प्रतिस्पर्द्धा और धूर्तता से संचालित होती है। घर-परिवार मानवीय संवेदनाओं से निर्मित होता है, जबकि बाजार का निर्माण आपसी विपरीत अभिरुचियों पर निर्भर रहता है। परिवार भावना, आपसी सहयोग, सम्पर्क, समन्वय और सह अस्तित्व के सिद्धान्त पर अवलम्बित होता है, जबकि बाजार पारस्परिक शोषण की नीति को संरक्षण प्रदान करता है तथा उपभोक्तावाद को पल्लवित होने के लिए आहार का कार्य करता है। घर-परिवार 'मूल्य' आधारित उपयोग को स्वीकारता है।

अतः आज मानवता और युवा के सम्मुख यक्ष-प्रश्न विद्यमान है, इन दोनों में से किसे चुनें? कौन-से विश्व दृष्टिकोण को स्वीकार करें? ये प्रश्न इसलिए उठ रहे हैं, क्योंकि हमने अपने प्राचीन शाश्वत मूल्यों की उपेक्षा की है।

युवाओं की ऊर्जा को सकारत्मक दिशा में प्रेरित करें – अतः युवाओं को उनमें संचित अपार अक्षय ऊर्जा का स्मरण करा कर उसे सकारात्मक उपयोग की ओर प्रेरित करने की आवश्यकता है। प्राचीन भारत की वैभवशाली एवं समृद्ध परम्परा, विज्ञान, कला, वाणिज्य, अंतरिक्ष और जीवन मूल्यों का ज्ञान उन्हें पुनः शक्तिशाली ऊर्जावान भारत के नवनिर्माण में भूमिका निर्वहन करने की प्रेरणा देगा, ऐसा विश्वास है। गीता के १८वें अध्याय के अंतिम श्लोक में ईश्वर-कृपा और पुरुषार्थ से ही विजयश्री की प्राप्ति की बात कही गई है। मुझे विश्वास है कि ऐसा विचार हमारे युवा आत्मसात् करेंगे तथा राष्ट्र के समग्र विकास में अहम् भूमिका निभायेंगे। ❍

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुहितानन्द जी महाराज का छत्तीसगढ़ प्रवास

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में वेबसाइट का लोकार्पण – १ नवम्बर, २०१६ को १० बजे रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर की वेबसाईट www.rkmraipur.org का लोकार्पण किया। इस वेबसाईट में आश्रम द्वारा संचालित सेवाकार्यों की जानकारी हिन्दी और अँग्रेजी दोनों भाषाओं में है। इसमें विवेक ज्योति के वर्तमान अंक और पुराने अंक भी दिये गये हैं। **रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर में महासचिव स्वामी सुहितानन्द जी महाराज और मुख्यमन्त्री श्री रमन सिंह जी द्वारा इन्डोर स्टेडियम का लोकार्पण –** २ नवम्बर, २०१६ को रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव स्वामी सुहितानन्दजी महाराज और छत्तीसगढ़ के मुख्यमन्त्री श्री रमन सिंह जी के द्वारा रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर में नव-निर्मित भव्य **इम्फोसिस सेमी ओपन ऑडोटोरियम कम इन्डोर स्टेडियम** का लोकार्पण किया गया, जिसमें ४००० दर्शकों के बैठने की व्यवस्था है। छत्तीसगढ़ का यह एक विशाल स्टेडियम है, जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं और अन्य कार्यों के लिये किया जा सकेगा। स्टेडियम लोकार्पण के बाद मुख्यमन्त्री जी ने आश्रम में भोजन किया और आई.टी.आई का अवलोकन करते हुये लगभग ३ बजे प्रस्थान किया। कार्यक्रम में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, मन्त्री रामशिला साहू, मन्त्री श्री केदारकश्यप आदि उपस्थित थे। आश्रम के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी ने सबका स्वागत किया।

महासचिव महाराज द्वारा नव-निर्मित साधु-निवास और बालिका छात्रावास का उद्घाटन

२ नवम्बर को प्रात: ९ बजे महासचिव महाराज ने रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर आश्रम में नव निर्मित साधु निवास और १० बजे बालिका छात्रावास का उद्घाटन किया। उसके बाद महाराज ने एजुकेशनल कॉम्पलेक्स और ब्रिहीबेड़ा में कृषि केन्द्र का अवलोकन किया।

३ फरवरी को महाराज ने शाम ४ बजे आई.टी.आई का अवलोकन किया। सचमुच आश्रम का आई.टी.आई अपने आप में अद्भुत है। ४ फरवरी को महाराज जी प्रात: ७ बजे नारायणपुर से चलकर १२ बजे रायपुर आश्रम पहुँचे और ५ बजे के हवाई जहाज से कलकत्ता हेतु प्रस्थान किया।

बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा – रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा में ८ से ११ अक्टूबर, २०१६ को दुर्गापूजा हुई, जिसमें लगभग २ लाख लोगों ने पूजा में भाग लिया। ९ अक्टूबर को कुमारी पूजा और सन्धिपूजा हुई। महाष्टमी को लगभग ४५००० और चार दिनों में लगभग १,५०,००० भक्तों को खिचड़ी प्रसाद दिया गया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में ९ अक्टूबर, २०१६ को दुर्गा महाष्टमी पूजा सम्पन्न हुई। उस दिन श्रीरामकृष्ण मन्दिर में विशेष पूजन-हवन हुआ और स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज के प्रवचन हुए। १८०० भक्तों ने अन्न-प्रसाद ग्रहण किया।

हमारे विदेश के आश्रमों – डरबन, चैट्सवर्थ, पीटरमेरिजबर्ग, मारीशस और बांग्लादेश के १२ आश्रमों में दुर्गापूजा हुई।

बेलूड़ मठ में २३ अक्टूबर, २०१६ को शैक्षिक अधिवेशन हुआ, जिसमें १९९ संन्यासियों और १०८ आश्रमाध्यक्षों ने भाग लिया। **भोपाल** – में भगिनी निवेदिता पर २५ और २६ अक्टूबर को व्याख्यान हुये, जिसमें १२०० विद्यार्थियों ने भाग लिया। **राजकोट** – के आदर्श-शिक्षा कार्यक्रम में ७ विद्यालय के २००० बच्चों ने भाग लिया। **विशाखापट्टनम्** – में भगिनी निवेदिता पर प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता हुई, जिसमें ५७५ विद्यालयों के ८७,००० बच्चों ने भाग लिया। **अलमोड़ा** – आश्रम में राज्य कपड़ा मन्त्री श्री अजय टामटा ने अलमोड़ा आश्रम का परिभ्रमण किया। ○○○

रामकृष्ण मिशन आश्रम

(रामकृष्ण मिशन बेलूड़ मठ का एक शाखा केन्द्र)

सेक्टर 15-बी मध्यमार्ग, चण्डीगढ़ - 160015

फोन : 0172-2549477

ई-मेल : rkmachandigarh@gmail.com

वेबसाइट : www.rkmachandigrh.org

प्रस्तावित सार्वजनिक ध्यान कक्ष, शैक्षणिक और सांस्कृतिक परिसर

विनम्र निवेदन

रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़ में सार्वजनिक ध्यान कक्ष, शैक्षणिक और सांस्कृतिक परिसर का निर्माण कार्य प्रगति पर है

प्रिय भक्तो, शुभचिन्तको एवं मित्रो !

चण्डीगढ़ में रामकृष्ण मिशन आश्रम भारत के विभाजन के बाद १९५५ में प्रारम्भ किया गया था। तब से आश्रम द्वारा शान्ति के इच्छुक लोगों के लिये आध्यात्मिक क्रिया-कलाप, नि:शुल्क सचल चिकित्सा सेवा, कालेज के छात्रों के लिये विवेकानन्द छात्रावास, स्कूल एवं कालेजों में मूल्य शिक्षा कार्यक्रम, आम जनता के बीच प्रेरणाप्रद और उदात्त उत्तम साहित्य का वितरण आदि कार्य चल रहा है।

पिछले कुछ दशकों के दौरान इन सेवा गतिविधियों में लगातार वृद्धि हो रही है। आश्रम के विभिन्न कार्यक्रमों जैसे प्रात: एवं सायंकालीन प्रार्थना, ध्यान एवं आधात्मिक सत्संग में भाग लेने वाले भक्तों की संख्या काफी बढ़ चुकी है।

इन सबकी सुविधा हेतु एक नये भवन के निर्माण का निर्णय लिया गया है। इस भवन में होंगे –

(अ) एक विशाल ध्यान-कक्ष एवं साधु-निवास (व्यय – लगभग *1.3* करोड़)

(ब) शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र (व्यय – लगभग २.१ करोड़)

योजना पर कुल व्यय – (लगभग ३.४ करोड़)

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के 11 वे अध्यक्ष पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज के द्वारा 24 नवम्बर 1985 को सार्वजनिक ध्यान-कक्ष का शिलान्यास किया गया था।

नवीन ध्यान-कक्ष एवं शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक-भवन का निर्माण कार्य प्रगति पर।

चेक/डिमाण्ड ड्राफ्ट **'रामकृष्ण मिशन आश्रम चण्डीगढ़'** के नाम से बनवाकर ऊपर दिये गए पते पर कोरियर, स्पीड पोस्ट या रजिस्टर्ड पोस्ट से भेज सकते हैं।

भारत में आप अपनी दानराशि निम्नलिखित बैंकों में सीधे जमा कर सकते हैं :

१. ICICI A/C No. 001301029198, ब्रांच सेक्टर 15-C, चण्डीगढ़, IFSC – ICIC000 2429

2. IDBI A/C No. 003104000083216, ब्रांच सेक्टर 8-C, चण्डीगढ़, IFSC - IBKL000000 3

जमा की गई दान-राशि का विवरण, अपना पता एवं फोन नम्बर उसी दिन हमें ई-मेल से भेज दें।

रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान आयकर धारा 80 (G) of I.T. Act 1961 के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

भगवान श्रीरामकृष्ण की सेवा में आपका

स्वामी सत्येशानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़